

रचयिता-परिचय-कण

जन्मतिथि : ६ अगस्त, १९१५

माता का नाम

स्व० श्रीमती रामराजी पाण्डेय

पिता का नाम

स्व० पं० गोपाल जी पाण्डेय

बालविवाहिता

स्व० श्रीमती रोशनी पाण्डेय

युवापरिणीता

स्व० श्रीमती चन्द्रावती पाण्डेय

जन्मस्थान

शाहपुरपट्टी, जिला-भोजपुर (बिहार)

मध्य विद्यालय-शिक्ष	:	शाहपुरपट्टी में ।
उच्च विद्यालय – शिक्षा	:	पटना सिटी (जिला) स्कूल ।
महाविद्यालय – शिक्षा	:	बिहार नेशनल कॉलेज, पटना ।

१. स्वाधीनता–संग्राम में १९३० एवं १९४२ ई०, अन्ततः कारावास, पेन्शन, परित्याग ।

२. व्यवसाय, पत्रकारिता, प्रधान सम्पादक (दैनिक 'नवराष्ट्र', दैनिक 'विश्वमित्र' साप्ताहिक 'अग्रदूत', 'स्वदेश', 'नवीन बिहार', 'बिहार जीवन', मासिक 'पाटल' एवं 'बालक') ।

३. व्यवसाय-क्रम में कार्यक्षेत्र–कलकत्ता, काशी, कानपुर, आरा, पटना, भागलपुर।

४. उच्चतम सम्मानोपाधि–हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग की उच्चतम सम्मानोपाधि–'साहित्यवाचस्पति' ।

५. उच्चतम गैरसरकारी पद–अध्यक्ष, बिहार-हिन्दी-साहित्य सम्मेलन एवं बंग प्रादेशिक हिन्दी साहित्य-सम्मेलन । वरिष्ठ उपाध्यक्ष,हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग ।

६. उच्चतम सरकारी पद–बिहार-सरकार की (उच्चतम) हिन्दी-समिति के द्वितीय (अन्तिम) अध्यक्ष; प्रथम अध्यक्ष थे डॉ० लक्ष्मी नारायण 'सुधांशु' ।

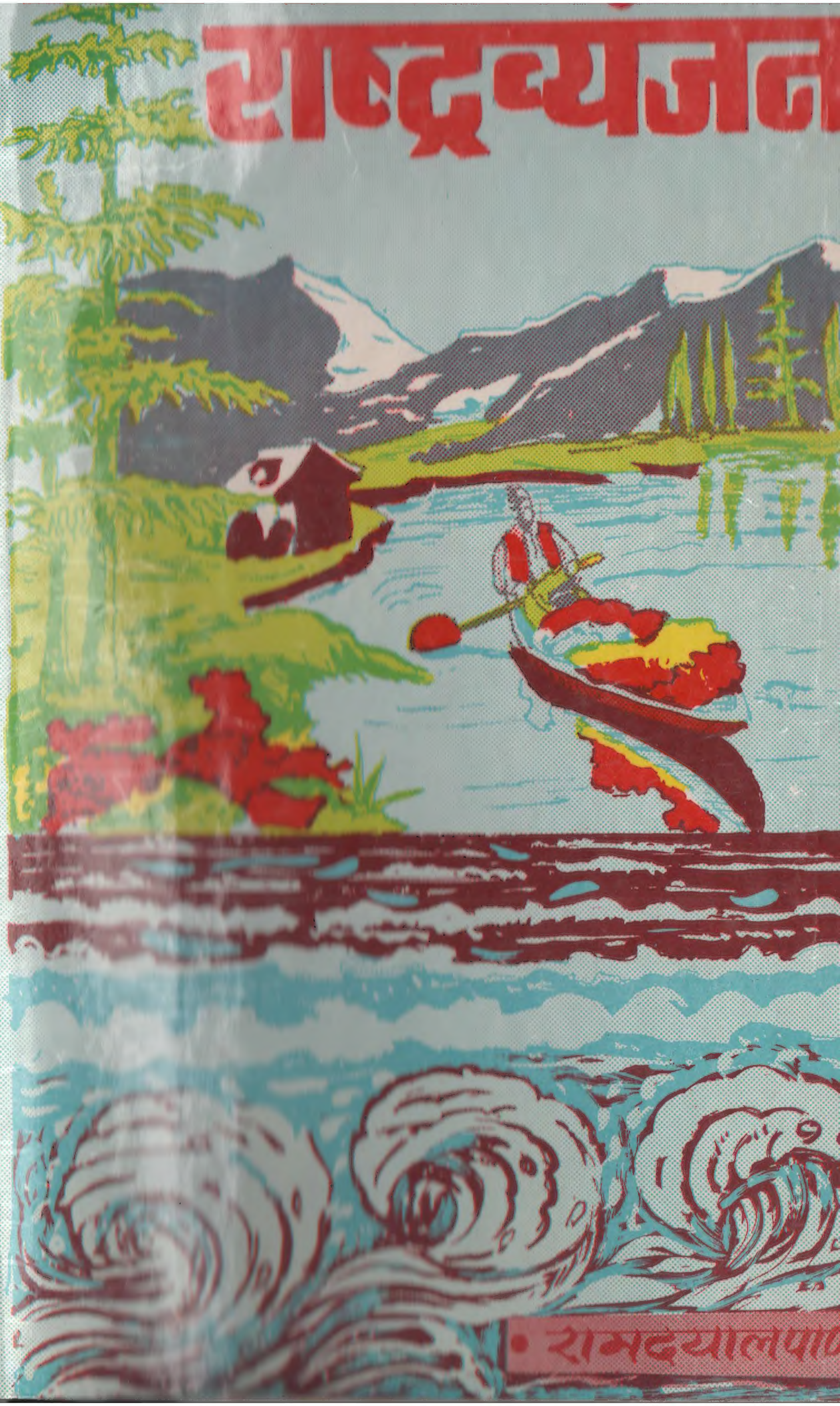
७. प्रकाशित काव्यकृतियाँ–१. 'गणदेवता' (संग्रह), २. 'अशोक' (प्रबन्धकाव्य), ३. 'शक्तिमयी' (चयनिका), ४. राष्ट्रव्यंजना' (चयनिका) ।

८. प्रकाशित हो रहा है–'युगान्तर' (प्रयोगात्मक महाकाव्य) ।

पता–**देवगीत, आशियाना नगर,** पटना–८०० ०१४ (बिहार)

राष्ट्रव्यंजना

• रामदयालपाण्डेय



'राष्ट्रव्यंजना'

(स्वतंत्र भारतीय आदर्श-यथार्थ जीवन-सम्बन्धी पद्य रचनाएँ)

रचयिता :

रामदयाल पाण्डेय

प्रकाशक :

पाण्डेय रचनावली प्रकाशन

'देवगीत', आशियाना नगर

पटना—८०००१४

प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान :
पाण्डेय रचनावली प्रकाशन
'देवगीत', आशियाना नगर
पटना-८०००१४

प्रथम संस्करण

प्रकाशन-वर्ष : १९९१ ई०

मूल्य : पचासी रुपये

मुद्रक :
न्यू साहनी प्रिंटिंग प्रेस
४/५६, राजेन्द्र नगर
पटना-८०००१६

स्मृति-तर्पण

स्वाधीनता-संग्राम-क्रम में मुझे ब्रिटिश गोलियों से
बचाकर रखने वाले देशभक्तद्वय

स्व० श्री मुरारीलाल केडिया (वाराणसी)

एवं

स्व० प्रो० ओंकारशंकर विद्यार्थी (कानपुर)

का सादर

—रामदयाल पाण्डेय

सस्नेह समर्पण

अकिंचन की अव्यावसायिक देशभक्ति एवं राष्ट्रसेवा—
प्रतिज्ञा के पोषक

सहोदरवत् धर्म-अनुज

डॉ० भवतोष (बी०) भट्टाचार्य

(विख्यात होमियो चिकित्सक, पटना) को

—रामदयाल पाण्डेय

अन्तिमा

सम्पूर्ण पुस्तक के लेखनोपरान्त जो लिखी जाय वह अन्तिमा ही तो है। मेरी दो काव्य-पुस्तकें ही तो पूर्व प्रकाशित थीं, (१) मानवतावादी, राष्ट्रीयतावादी, रूढ़िवाद-विरोधी एवं शोषण-मुक्तिवादी संकलन 'गणदेवता' और (२) स्वतंत्र भारत की सम्यक् शासन-व्यवस्था का उत्प्रेरक प्रबन्ध-काव्य 'अशोक'। अर्थाभाव के कारण इन सन्दर्भों की समस्त रचनाओं का प्रकाशन सम्भव नहीं, अतः चयनित करनी पड़ीं और बहुत-सी रचनाएँ छूट गईं। सन्तुष्ट हूँ कि चार दिशाओं में आवश्यक सेवा सम्भव हो सकी और भारत की छवि भी यथासाध्य उजागर हो सकी। कवि-रूप में अपनी छवि उजागर करना जब आरम्भ में भी अपना उद्देश्य नहीं था तो अन्त में क्यों हो? हाल में नारीजीवन सम्बन्धी काव्यचयनिका 'शक्तिमयी' प्रकाशन हुई। अस्तु।

अपने राष्ट्र का स्वरूप मधुर ही तो है नहीं प्रत्युत कटु भी है। स्वास्थ्यकर भोजन के छह समन्वित रसों में एक रस कटु भी है। स्वभावतः कटु सत्य भी अंकित करने पड़े हैं। काव्य का मूलाधार 'सत्यम्' ही तो है। फिर भी मैं कटुसत्य-कथन के लिए क्षमाप्रार्थना का परिहार नहीं करता। अतः क्षमाप्रार्थी हूँ। यों 'हितम् मनोहारि च दुर्लभम् वचः', साहित्य में यथार्थ भी तो अनिवार्य ही है।

अर्थाभाव में इस निवेदन को भी संक्षिप्त ही रखना है। जीवनपर्यन्त अर्थाभाव का मूल कारण रही मेरी बाल-प्रतिज्ञा—'लूँगा न द्रव्यकण भी मैं राष्ट्र से कभी'। आय-व्यवसाय-प्रवृत्ति से पृथक् रहा। ६७वें से ७३वें वर्ष की आयु-अवधि में बिहार-सरकार ने मुझे सरकारी सेवक मान लिया। सन्तोष है कि सरकार मुझे घपले-घोटाले से मुक्त मानती रही। मेरे लगातार आग्रह पर भी वह मुझे छोड़ने को प्रस्तुत न थी। इसका कोई पेन्शन तो सम्भव नहीं। स्वाधीनता संग्राम अथवा साहित्य सेवा के पेन्शन की कामना मैंने नहीं की। पुत्र-परिवार का भी कोई ऐसा सदस्य नहीं जो एक पैसा भी दे सके। तब तो जीवन-यापन भी असम्भव। परन्तु—

बंग भाषा के सहारे चल रहा जीवन हमारा;
है लगा इस्पात का कूल्हा, खड़ा तब तन हमारा।
खेलता मझधार, झंझानिल, तंरगों से निरन्तर;
क्या भला मलयानिलों के संग ढूँढ़ूँ मैं किनारा ?
मनोबल को धनबल की अपेक्षा कहाँ ?—
धन गया तो क्या हुआ ? क्या वह कभी होता अचंचल ?
सर्वदा उत्सर्ग से ही क्या नहीं बढ़ता मनोबल ?

काव्य-प्रकाशन की दिशा में राष्ट्रकवि-द्वय पं० माखनलाल चतुर्वेदी तथा पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' भी तो पीछे ही रहे। इन गुरुजनों के समान आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ० सम्पूर्णानन्द, श्री अन्नपूर्णानन्द आदि अन्य गुरुजन भी नहीं चाहते थे कि मैं उत्तर प्रदेश से बिहार लौटूँ। उन्होंने कहा था कि बिहार में मेरी क्षति होगी। किन्तु मैं अपने जन्मराज्य बिहार की सेवा के लिए लौटने पर दृढ़ था। यों कानपुर मेरे लिए जन्मस्थानवत् ही हो गया था। और जन्मराज्यवत् हो गया था समस्त उत्तर प्रदेश। मेरा प्रथम साक्षात्कार प्रकाशित किया उत्तर प्रदेश के ही साहित्मिक मासिक पत्र 'सानुबन्ध' (लखनऊ) ने। वह मेरे आत्मसंस्मरण भी मँगवाकर सपारिश्रमिक क्रमशः प्रकाशित कर रहा है।

कलकत्ता भी ऐसा ही था मेरे लिए। बिहार से पहले उसीने मुझे अपना प्रादेशिक अध्यक्ष बनाया और बंग प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को जीवन्त करने में प्रचुर सहयोग दिया। उसका भी आग्रह था कि मैं उसे न छोड़ूँ। स्व० धर्माग्रज श्रद्धेय डॉ० सेठ गोविन्द दास चाहते थे कि मैं उनके जबलपुर या दिल्ली में रहूँ। इन सबको मैं सादर नमन करता हूँ। तीन दशकों के पत्रकार-जीवन में मैंने अनुभव किया कि समाचारपत्रों की शक्ति कितनी बड़ी होती है। किन्तु यह अनुभव भी हुआ कि—

'यदि हो चरित्र नर में, अखबार से बड़ा है।'

इसी प्रकार बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् का प्रथम उपाध्यक्ष-सह-निदेशक होने पर मैंने अनुभव किया कि सरकार की भी बड़ी शक्ति होती है। परन्तु यह भी कि—

(शेष पृष्ठ १६३-६४ पर)

अनुक्रम

'राष्ट्रव्यंजना'

सत्य-शौर्य, अभियान-शक्ति,
उत्पादन-धन, गौरवमय;
शिवं-कर्म, साहित्य-विभामय;
सृजन-शिल्प-सौष्ठवमय ।

मानवत्व-महिमा-गरिमा का
भारत उच्च हिमालय;
रहे सृष्टि-सम्मान-सुमंडित;
स्वावलम्बमय, दुर्जय ।

—रामदयाल पाण्डेय

मधुमंगला

देखना मैं चाहता हूँ
हरित भूमि, समुज्ज्वला;
श्रवण करना प्रीति-वाणी,
शान्ति-श्री, मधुमंगला ।

कोकिला मधुमासिनी हो;
सतत पूर्ण स्वतंत्रता;
सर्वसुख-समतामयी;
साधनमयी हो मनुजता ।

मेदिनी शाश्वत रहे
सर्वत्र ही आनन्दिता,
कर्म से परिपूरिता,
सद्भाव-सुमन-सुगंधिता ।

विश्व को विकसित करे चिर
कवि-हृदय-परिकल्पना;
सर्वदा वैज्ञानिका,
सक्रिय-सफल संयोजना ।

विहग कर पाते नहीं
अपनी धुरी पर उड्डयन;
नीड़सीमा-मुक्त उनको
चाहिए उन्नत गगन ।

राष्ट्र भारत की रहे
मंगलमयी चिर सर्जना;
अर्पिता निज देश को हो
प्राण-धन-बल-वंदना ।

ज्योतिर्मयी

राष्ट्र भारत की प्रजननी चिर अमर हो;
अमर भारतभूमि, पावन, चिन्मयी;
आक्रमण-तम से अजेया मुक्त, हो यह
विजयिनी, ज्वालामयी, ज्योतिर्मयी ।

चिर अदम्या दे रही संचेतना है;
कविगणों को दे रही संकल्पना है,
कर्म की स्रोतस्विनी भागीरथी है;
सर्वदा इस भूमि को कवि-वंदना है!

उच्चतम नगराज भूतल का रहे चिर;
शुभ महाम्बुधि शान्ति-पारावार मधुमय;
मधुर कावेरी, सुताप्ती, प्रखर कृष्णा;
पंचनद, गोदावरी, लोहित सुनिर्भय ।

विपिनगृहिणी, अन्नपूर्णा, उर्वरा हो;
यह प्रसविनी भूमि, पूर्ण स्वनिर्भरा हो;
निखिल उद्यम-योगिनी, उद्योगपूर्णा;
विकसिता सम्पूर्णतः, हरिताम्बरा हो ।

तरुण संततियाँ रहें आरुण्य-मंडित;
भूमि शाश्वत ऐक्य-शक्ति-अखंडिता हो;
यह सदा महिमामयी, गरिमामयी हो;
पूर्ण शालीना, प्रवीणा, वंदिता हो ।

शुचि सुरम्या, मलय-प्राण-प्रवाहिनी यह;
शक्तिदात्री के लिए न अदेयता हो;
नमन, श्रद्धा-सुमन हों सारे समर्पित;
उच्चतम इसकी सदा श्रद्धेयता हो ।

राष्ट्र-वंदना

यह स्वर नहीं रहेगा, शाश्वत न तन रहे;
भारत-अखंडता को कवि का नमन रहे ।

यदि फूल भी न होगा, यदि फल नहीं रहे;
कोकिल नहीं रहेगा, फिर भी चमन रहे ॥

दुख और अश्रु पीकर हँसता हूँ इसलिए—
हँसता हुआ हमेशा मेरा वतन रहे ।

भारत-वसुंधरा पर जो बह रहा पवन;
अर्थी वही रहेगा, उज्ज्वल कफन रहे ।

लूँगा न द्रव्य-कण भी मैं राष्ट्र से कभी;
कवि की बुलन्दियों का यह बाँकपन रहे।

चिर प्रेम-भूमि भारत हो तीर्थ विश्व का;
जन-जन सदा इसीका करता भजन रहे।

शुभ शान्ति का सदन हो, शुभ कर्म का सदन,
शोभित यहाँ निरन्तर मधुमास-वन रहे।

संघर्षमय सतत हों जन स्वाभिमानमय;
अभियानमय अनवरत, अविचल वचन रहे।

●

मुक्तक

चिर अनुभूति-कल्पना चिन्तनजीवी कवि करता सम्प्रेषण;
करता निज अन्तःस्वरूप का कालपृष्ठ पर वह प्रक्षेपण;
प्रेषणीयता आवश्यक है; सौमनस्य-समरसता वांछित;
अवधारणा अखिल अपनी वह करता रहता है प्रक्षेपित।

सम्प्रेरक राष्ट्र

धरणी-सम्प्रेरक राष्ट्र सदा,
मानवता-संस्कृति- निर्माता;
वसुधा - कुटुम्ब-चेतनापूर्ण,
चिर अमृतमंत्र का उद्गाता।

यह प्रत्याक्रमण-प्रवीर देश,
शुभ स्वतंत्रता-रक्षक शाश्वत;
करता भव का सत्कर्म-भरण;
प्रज्ञा-सम्पोषणमय भारत।

कुल भारतीय इसके सुपुत्र
यदि बनें, तभी तो हैं आत्मज;
चिर हो सुकर्मवत्ता-स्वभाव;
अन्यथा तुच्छ हम ज्यों भू-रज।

नारियाँ आत्मजा इसी भाँति;
सब हों चरित्र-बल से उदात्त;
हम तभी राष्ट्र को, भूतल को,
दे सकते हैं अभिनव प्रभात।

क्या स्वतंत्रता से ही संभव?
बन सके सुपुष्ट अखिल अवयव;
करना होगा अविरत प्रयास;
अन्यथा बनेंगे जीवित शव।

चलते अतीत से नहीं राष्ट्र;
रचना पड़ता है वर्त्तमान;
सुन्दरतर-सुखमय हो भविष्य;
रखना पड़ता है सतत ध्यान।

हम चिर सुकर्म-अभियानी हों,
तो देश रहेगा ही मधुमय;
अन्यथा भला क्या जीवन है?
चाहे जितना हो धन-संचय।

मानवता-मेरुशिखर भारत
है रहा त्याग-तप-कर्म-वीर;
जीवन-साधन - उत्पादनमय,
रत्नाकरवत् गरिमा-गभीर।

समवितरणमय जीवन-साधन,
निर्भय, अजेय जनबल समस्त;
हों देशभक्तिमय कुल जनगण;
क्यों रहें पराजय-प्रलय-त्रस्त;

हों सत्य-प्रेम, अन्याय न हो;
यदि न हों विषमता-परिशोषण,
क्यों हो भारत अवरुद्धप्रगति?
अक्षय होगा सार्थक यौवन।

राष्ट्र-संकल्प

मैं न भाँगूगा जमीं की पस्तियों से;
मैं धरा को व्योम से उन्नत करूँगा,
वर्तिका से, स्नेह से, तप से, जलन से
मृत्तिका को ज्योति में परिणत करूँगा।

तिमिर तो आलोक का है घन तपोवन,
और झंझावात भी उच्छ्वास है मंजुल विभा का;
जलन, यह तो दीप की संजीवनी है;
हवन, यह तो प्रेय ही है वर कला का।

मरण को ही वरण करना हो भले ही,
पर न लौ के भाल को अवनत करूँगा।

कीच में ही सर्जना होती कमल की;
तरलता है धार की हिमवान में ही;
आर्द्रता सोई हुई है बालुका में;
परुषता का अन्त है पाषाण में ही।

पुष्प से लिपटा हुआ कब तक रहूँगा?
मैं अनल-अंगार से कब तक डरूँगा?

बन्धनों की बाहुओं में मुक्ति-ध्वज है;
शान्ति का आवास है कोलाहलों में;
सन्निहित उत्कर्ष चिर संघर्ष में है;
रश्मि हँसती रजकणों की हलचलों में।

मृत्यु का घट भी न रहने रिक्त दूँगा;
विहँस उसमें अमृत जीवन का भरूँगा।

रेणुमय हूँ, ज्योति का विस्तार मैं ही;
सृष्टि के अन्तःकरण का प्यार मैं हूँ;
बीन तो टूटी न जाने बार कितनी,
पर कभी टूटा नहीं, वह तार मैं हूँ।

दृश्य के भी पार मैं देखा करूँगा;
लक्ष्य के भी पार मैं चलता रहूँगा;
देह के भी पार मैं जीवित रहूँगा;
मैं चिता के पार भी जलता रहूँगा।

प्राण-गान

प्राण के जयगान से मैं रुदन को हरने चला हूँ;
कंठ की कुंठा मिटा, वैकुंठ में रचने चला हूँ।

मैं चला आकाश में अधिवास निज नूतन बनाने;
श्वास के विश्वास से आकाश को ऊपर उठाने;
मैं चला हूँ लोक के आलोक का गौरव जगाने;
चन्द्र-तारों के नयन में स्वप्न भूतल के सजाने।

मर्त्य के अमरत्व को प्रतिमूर्त मैं करने चला हूँ;
काल के विकराल मुख में मैं अमृत भरने चला हूँ;

मैं निराशा की निशा में अमर आशा का सवेरा;
लाँघता मैं चल रहा दिक्काल का दुर्लंघ्य घेरा;
आप्त को कर प्राप्त, मैंने व्याप्ति की चिन्ता बिसारी;
दृष्टि में मेरी सिमट आई युगों की सृष्टि सारी।

मैं वसन्तों की हँसी पतझार पर हँसने चला हूँ;
जिन्दगी की ले फसल, बीरान पर बसने चला हूँ।

देखना, तारुण्य का आरुण्य धूमिल हो न पाये;
देखना, आनन्द का अनमोल वैभव खो न जाये;
चल रहा हूँ अनवरत अभियान का यौवन जगाये;
देखना, उत्साह का व्यक्तित्व बूढ़ा हो न जाये।

मनुजता के स्वप्न का मंगल-कलश भरने चला हूँ;
मैं उसीकी जयकथा की चिर व्यथा हरने चला हूँ।

राष्ट्रमंगल

राष्ट्रमंगल ही स्वमंगल,
सतत मंगलमय रहे;
फल सदा हों सरस, मधु,
कुल सुमन भी फलमय रहें ।

सर्वदा सत्कर्मरत हों
राष्ट्र-जनगण कर्ममय;
देश की होती रहे
सर्वत्र रक्षा-रणविजय ।

राष्ट्र में आते रहें जन
सत्य पाने के लिए;
देश जनगण बढ़ चलें
जीवन जगाने के लिए ।

शान्ति-सुखमय राष्ट्र भारत
सृष्टि को वरदान दे;
निखिल वसुधा को निरन्तर
त्राण दे, कल्याण दे ।

अखिल भारत हो अनवरत
सफलता-अभियानमय;
देश का यौवन रहे
अविजेय, ज्योति-वितानमय ।

निखिल क्षणदाएँ रहें
मधुगानदात्री; धृतिमयी;
सभ्यता विज्ञानपूर्णा;
कृति रहे संस्कृतिमयी ।

पड़ोस

मुझको पड़ोस प्यारा है।

सीधी-टेढ़ी गलियाँ, घर-आँगन;
दीवारें, दरवाजे, वातायन;
झाँकते जड़े-से जिनमें लोचन,
ले कभी वसन्त, कभी ले सावन।

जानता स्नेह क्या सीमा-बन्धन ?
मुर्दों में भर देता नवजीवन;
वज्रों में भर देता आलोड़न;
दीवारों का होता आलिंगन।

यह बहती हुई स्नेहधारा है।

बादल से माँगा जाता पानी;
बिजली से जलती हुई जवानी;

किरणों से माँगी कंचन-काया;
मिट्टी से पौरुष, ममता, माया।

खाई जातीं सबकी सौगातें;
भूली हैं जाति-धर्म की बातें;
सबसे सबके रिश्ते-नाते हैं;
बहनों को भाई अपनाते हैं।

यह कैसी मुक्तिमयी कारा है!

चिड़ियाँ आँगन से आँगन जातीं;
कुछ तिनके दे आतीं, कुछ लातीं;
खबरें लाती, उत्तर पहुँचातीं;
आँगन-आँगन का मेल करातीं।

इस तरु को दे उस तरु का मर्मर;
संगीत बना देतीं दोनों के लय-स्वर;
तरुओं का मिलन कराने वाली-
उड़ती हैं चिड़ियाँ डाली-डाली।

उड़ जाते हैं मन भी कितनों के;
आँखों में चित्र लिये सपनों के ।
हैं बने मुक्ति के मंजुल साधन
दर्शन के प्यासे आतुर लोचन ।

हितबद्ध सभी हैं सबकी कृति से;
हो सके न खंडित निज संस्कृति से;
भूगोल नहीं भाजक भू पर है;
मानव इतिहासों से ऊपर है ।

झगड़े बुदबुद, जीवन सागर है;
बुदबुद पर उठती प्रेम-लहर है;
जीवन मानव का बँधा लहर में;
देशान्तर, प्रान्तर, ग्राम-नगर में ।

ये क्षण भर के तूफान मिटेंगे;
बिछड़े-बिखरे फिर गले मिलेंगे ।

यह आशा ध्रुवतारा है ।

गवाक्ष

लोचन भी तो होते गवाक्ष काया-गृह के;
सर्वाधिक आवश्यक शरीर के हैं अवयव;
पर अर्न्तदृष्टि सर्वदा हो सक्रिय, सार्थक;
चिर शान्ति-एकता-प्रीतिनिहित भारत-गौरव ।

देखते रहें हम सृष्टि-सत्य वातायन से;
पर द्वार नहीं उन्मुक्त रहें रक्षाविहीन;
आदान और अवदान रहें सुविवेकपूर्ण;
हों वसुन्धरा में हम विचार-वाणी-प्रवीण ।

करते जायें आचार-कर्म उन्नत अविरत;
आलोक नहीं खद्योतों को भी रहे व्यर्थ ;
यों विवस्वानवत्, शशिकरवत् हम रहें सतत;
असमर्थ भला क्यों रहें ? रहें शाश्वत समर्थ ।

निज राष्ट्र महामहिमामय-गरिमामय अनुपम;
इस कीर्त्तिमान की रक्षा में हम हों सक्रिय;
सर्वथा रहे उत्तुंगध्येय अभियान-केतु;
कण-कण भारत का हो अमूल्य, सर्वाधिक प्रिय ।

मुक्तक

विविध व्यस्ततामग्न विश्व यह हो ना जाय दिग्भ्रमित कदाचित्;
समाधिस्थ कवि करता रहता उसे संयमित और सन्तुलित ।
चिर कवि-कर्म कठिन होता है; वैभव सुलभ नहीं होता है;
गाता है संसार के लिए; विश्व-वेदना से रोता है ।

सृजन-संगीत

मृत्यु-सम्मुख भी सदा साहस दिखाते ही रहे;
प्रलय में भी हम सृजन-संगीत गाते ही रहे ।

प्रबल झंझानिल रहे आते बुझाने के लिए;
मेटने को हम तिमिर दीपक जलाते ही रहे ।

कठिन शृंगारोह से है गति नहीं प्रतिहत हुई;
हिमशिखर पर भी विजय-ध्वज हम उड़ाते ही रहे ।

मेघ से क्या भीगते हैं ? अग्नि से जलते कहाँ ?
अनिल से उड़ते कहाँ ? निज गति बढ़ाते ही रहे ।

हम हुए नतमौलि कब उन्नत-प्रखर अभियान में ?
ज्योति-मंगल-कर्म के तरुवर लगाते ही रहे ।

कब हुए मझधार से भयभीत ? कूलासक्त कब ?
सर्वदा मझधार में तरणी चलाते ही रहे ।

सर्प लिपटे ही रहे, विष-ज्वार चढ़ता ही रहा;
कंठ में विषपान का गौरव जगाते ही रहे ।

यौवन

चाहे ब्रिजली कौंधी नभ में, चाहे घिर आई घनमाला;
यौवन जग को देते आये; देते आये यौवन-ज्वाला।

बिजली की कौंध चमकती है बादल की भरी जवानी से;
बादल होते गतिमय धरणी की जलती हुई कहानी से;
पर्वत जीवनमय होते हैं निर्झर को तरुण रवानी से;
सागर जवान तब होते हैं जब आग धधकती पानी से।

चाहे हो सृष्टि सुहागभरी या महाप्रलय हो मतवाला;
चाहिए जवानी धरती को, चाहिए जवानों की ज्वाला।

कोई गिरि-गह्वर पूज रहा, कोई प्रतिमा पाषाणी को;
कोई तरु को, कोई तट को, कोई निर्झर के पानी को;
कोई पितरों को पूज रहा, कोई पितरों की वाणी को;
युग पूज रहा है युग-युग से पागल जवान बलिदानी को।

प्रस्तर पर पुष्प खिलाने हों, देनी हो मुण्डों की माला;
चाहिए जवानी धरती को, चाहिए जवानों की ज्वाला।

जब प्रकृति-साधना से तपकर, खुल-खिलकर एक जहान बना;
जब मनुज-कल्पना से पृथ्वी का पिता स्वयं भगवान् बना;
जब संसृति का जीवन-विधान देवों का ही वरदान बना;
तब स्वाभिमान का दूत, देवता युग का एक जवान बना।

चाहे जगमग दीवाली हो, चाहे हो घोर तिमिर काला;
चाहिए जवानी धरती को, चाहिए जवानों की ज्वाला।

यौवन रहता जब शान्त, शान्ति-सर्जन का छन्द निकलताहै
होता यौवन जब क्रान्त, बन्ध खुलने के लिए मचलता है;
यौवन की शक्ति जगा जड़ जग दौड़ता, उछलता, उड़ता है,
जलते युग-युग के कलुष जहाँ यौवन का शोणित जलता है।

सर्वस्व मिटे, पर अमर सत्य यह कभी नहीं मिटनेवाला;
चाहिए जवानी धरती को, चाहिए जवानों की ज्वाला।

सर्वायुधमय

सर्व आयुध हों, सुरक्षा के लिए सम्पूर्णतः;
सर्वदा निर्माणकर्त्ता, प्रविधि से सज्जित रहे।
सबलता-प्रज्ञान-वैभव से विमंडित हो सदा;
निखिल राष्ट्र अखंड हो, कण भी नहीं खंडित रहे।

राष्ट्र प्रत्याक्रमण-क्षम चिर हो सदा अभियानमय;
आक्रमण करता नहीं तो आक्रमण यह क्यों सहे
राष्ट्रसैनिक हों सभी जन, पूर्णतः सन्नद्ध हों;
देशरक्षा के लिए जितना रुधिर अपना बहे।

मूल्य कोई भी नहीं होता बड़ा है राष्ट्र से;
राष्ट्रजन कोई कभी क्यों हो विरत बलिदान से ?
अखिल जन प्रत्येक कण के हेतु न्योछावर रहें;
देश का वैभव सतत बढ़ता रहे परिदान से।

क्यों भला मस्तक झुकेगा दंभियों के सामने ?
मित्रता-सौजन्य के सम्मुख सदा सुविनत रहे।
स्वाभिमानी सर भला क्या हैं कभी झुकते कहीं ?
अनय से संघर्षरत चिर, विजय-गर्वोन्नत रहे।

मुक्तक

कवि की क्या आकांक्षा रहती ? कवि की आकांक्षा सबका सुख;
नहीं किसी का दुःख चाहता; सहता एकाकी अपने दुख।
रूढ़िवाद से मुक्त निरन्तर, कवि सुधारकामी होता है;
धरणी की विस्तार-भूमि में बीज क्रान्ति के चिर बोता है।

राष्ट्रप्रतिभा-मेधा

सर्वदा राष्ट्रप्रतिभा-मेधा
का स्थान विश्व में सर्वोपरि;
तप-अध्यवसाय-परिश्रम से
होता आया उत्थान चरम।

था मिला राष्ट्र-संरक्षण चिर
इन वर विभूतियों को अनुपम;
होता आया क्रमशः विकास,
समुचित सम्मान पा सका श्रम।

इनमें कोई था कहाँ ? भद
चलती आई धारा अबाध;
जीवन रत्नाकर तुल्य बना;
था रहा राष्ट्रपथ ज्योतिर्मय।

समता का था अविरल प्रवाह;
भारत-प्रतिभा-मेधा को था
संप्राप्त मान जग में अथाह;
था दिग्दिगन्त में चिर निर्भय।

भारत का जगमग कीर्त्तिमान
वसुधा का उन्नत महास्तंभ;
गरिमा-महिमा-मंडिता रही—
भारत अखंड की विजय-ध्वजा।

इस पुण्य राष्ट्र का यज्ञ-अश्व
क्या रोक सका कोई भूपति ?
सब रहे निरामय, सुखी, तुष्ट;
राजा हों अथवा अखिल प्रजा।

विज्ञान, ज्ञान, वाणिज्य, कला,
सब रहे विश्व भर से विकसित;
इसलिए राष्ट्र भारत से थे
सीखते रहे सब नर चरित्र।

सर्वोपरि मानव-मूल्य रहे;
सर्वाधिक सक्रिय सदाचार;
सर्वोतम सम्मान्या समस्त
भारत-विचारधारा पवित्र।

क्या नर-नारी का यहाँ भेद ?
नारियाँ वेद-रचयित्री थीं;
थीं वैज्ञानिका, सैनिका भी;
जग में जिनका अद्भुत प्रभाव।

जनयित्री मानव-मेधा की,
प्रतिभा की; सतत पालिका भी;
शिक्षिका, प्रशिक्षणदात्री वे,
पालतीं कहाँ हीनता-भाव ?

क्या अहम्मन्यता थी कदापि ?
थी स्वाभिमान में विनम्रता;
सक्षम, कर्मठ, चिर जागरूक,
जानती कहाँ थीं परवशता ?

वे कभी नहीं विवशा, अबला;
थीं त्रिविध शक्तियों की प्रतीक;
दे सकीं राष्ट्र को अतः सदा
समता, स्वतंत्रता, गतिमयता।

था शक्तिपूर्ण चिर नैतिक धन;
बल-संरक्षित भारत समृद्ध;
देती समृद्धि जनगण-सेवा;
पीड़ित सेवारत सर्वाधिक।

परमार्थ-निरत था गौण स्वार्थ;
बन सका ऐक्य का महासेतु;
बढ़ते आये इस हेतु अतः
आत्मिक विकास, गौरव नैतिक।

कर सके राष्ट्र अभियान पुनः,
हो सके पूर्ववत् राष्ट्रकेतु—
सर्वोच्च, विश्व-नेतृत्वपूर्ण,
बन सके पुनः यह महाशक्ति।

क्या क्षेत्र, राज्य का भेदभाव ?
अंचलता का संकीर्ण भाव ?
अविभाज्य राष्ट्र हो सम शाश्वत;
कण-कण के प्रति हो देशभक्ति।

मुक्तक

बोलो विप्लव की वाणी कवि, दो समाज को नूतन जीवन;
जिसमें सुख हो, दुःख नहीं हो; न हो कहीं उत्पीड़न-शोषण।
रहो जागते कवि समता के; अवरोधी-बैषम्य-अनय के;
अन्तिम पल तक रचो गीत नव स्वतंत्रता-समता की जय के।

कर्मलोभ

कर्मलोभ ही काम्य व्यक्ति का;
विभव-लोभ क्या वांछित ?
कर्मवीरता राष्ट्र-शक्ति है;
भूमि-लोभ चिर लांछित।

जितनी भी हो भूमि, देश
पर्याप्त उसी को माने;
क्या करना विस्तार क्षेत्र का ?
परम सत्य पहचाने।

क्यों आक्रमण किसी पर करना ?
प्रत्याक्रमण उचित है;
रक्षा तो समुचित सदैव है;
सदा न्याय वांछित है।

जो आक्रमण नहीं करता, वह
राष्ट्र सुरक्षित होगा;
निरपराध का संरक्षण ही
चिर मनुजोचित होगा।

गर्हित अनल नहीं क्या होता ?
होता न्याय प्रशंसित;
समता-भाव प्राण होता है;
मृत्यु विषमता में नित।

शान्ति निहित रहती समत्व में;
निहित शान्ति में सुख है;,
दुख की जननी है अशान्ति ही;
जीवन युद्धविमुख है।

श्रम आवश्यक है कि हो सके
अधिकाधिक उत्पादन;
निष्क्रियता-आलस्य भला क्या
दे सकते हैं जीवन ?

रहे भूमि या द्रव्य, चाहिए
स्वावलम्ब की क्षमता;
स्वतंत्रता की रक्षा करती
सतत आत्मनिर्भरता।

धनलोभी ही शोषण करता,
व्यक्ति राष्ट्र जो भी हो;
बढ़ती जाती है अतृप्ति ही;
क्यों कोई लोभी हो ?

कलुषित ही स्वीकार नहीं
करते कलुषों की सीमा;
होने देते कभी नहीं वे
अनल पाप का धीमा।

दुष्प्रवृत्ति यह महाभयंकर,
चिर इससे बचना है;
सद्वृत्तियाँ मात्र करती
नरता की संरचना हैं।

नहीं निकटता तक सीमित;
भारत सुदूरदर्शी है;
रक्षा में ही वह्नि-सदृश;
अन्यथा अमृतवर्षी है।

इसी दृष्टि से रह सकता है
अजर और अविनाशी;
नहीं बनेगा कभी राष्ट्र यह
परधन का अभिलाषी।

इसी दृष्टि से बढ़ सकता
भारत उन्नति के पथ पर;
इसका ही जीवन-दर्शन
कर सकता भव को भास्वर।

★

सिद्धान्तजीवी

राष्ट्र है सिद्धान्तजीवी;
मात्र धनजीवी नहीं,
उच्चतम बल हैं सदा
मानव-मनोबल, आत्मबल।

धन वचन-आचरण उत्तम;
अन्य धन तो निम्न हैं;
चाहिए निर्झर-नदों में
क्या नहीं चिर स्वच्छ जल ?

यदि पड़े विस्तार करना,
फिर करें संकोच भी;
मेदिनी को है कहा हमने
टिकी है कूर्म पर।

कूर्मवत् संकोच भी हो;
कूर्मवत् विस्तार भी;
राष्ट्र का रहना सुनिश्चित
है जयी, निर्भय, अमर।

मात्र जनसंख्या नहीं—
होती चरम संख्या कभी;
चाहिए ही राष्ट्र में
होना अजय सिद्धान्त-बल।

बाल बाँका कर नहीं
सकते कदापि अरातिगण;
चिर सदाशय राष्ट्र की जय
है हिमालयवत् अटल।

मात्र साधन को उचित
हैं मानते व्यवसाय में;
साध्य तो होते नहीं
व्यवसाय करने के लिए।

ध्येय मात्र सदाचरण है;
पुंज वैभव का नहीं,
कर्म-साधन संकटों से
है उबरने के लिए।

ज्ञात है गंतव्य तो
होगा दिशा का भ्रम नहीं,
मनुजता-रक्षण सदा
आलोक-ध्रुवतारक रहे।

अचल नैतिकता रहे तो
अचल हैं सिद्धान्त भी,
साधनों के संग उत्तम
साध्य आवश्यक रहे।

छोड़कर संस्कृति भला
कृति कौन-सी होगी सुखद ?
शान्ति का मधुमास ही
है चाहता आनन्द-वन !

जयपताका उच्चतम
होती सदैव सुकर्म की,
देश भारतवर्ष है
सिद्धान्त का पावन भवन ।

मुक्तक

दोनों हाथों से कितने ही सतत लूटने श्री-सुषमा;
ऐसी भारत-सन्तति के हित उचित कौन-सी है उपमा ?
वर्त्तमान कुछ और भूत कुछ सदा लूटते ही जाते;
कितने कृषक-श्रमिक ऐसे जो भोजन पूर्ण नहीं पाते ।

कर्त्तव्य-बन्धन

राष्ट्र भारत मानता
कर्त्तव्य का शाश्वत सुबन्धन;
आयु अथवा आय का
ग्रसता नहीं इसको प्रलोभन ।

सत्य - नय के प्रति सदा
करता रहा कर्त्तव्य-पालन,
पुनः ऐसा ही करे, चिर
हो सदा कर्मानुशासन ।

ध्येय यदि यह छोड़ देगा,
क्या भला जीवन रहेगा ?
कठिनतम आघात कैसे
संकटों का यह सहेगा ?

आम्रतरु यदि फल नहीं दे,
छोड़ दे क्या गीत कोकिल ?
लक्ष्य अपना पथिक त्यागे
क्या, रहे यदि पंथ पंकिल ?

देश यह करता रहा है
सत्य-नय का ही समर्थन;
चिर समत्व-स्वतंत्रता का
है रहा करता सुपोषण ।

विषमता - शोषण - समर्थक
क्या भला भारत बनेगा ?
स्नेहमय कुल दीप हों तो
सफल दीपोत्सव मनेगा ।

सतत प्रतिरोधी रहा है
देश अपना आक्रमण का;
अमृत - पय से शान्ति के
करता रहा सिंचन चमन का ।

अखिल भारत वर्ष में
आलोक रहना चाहिए ही;
क्या निशा को दिन, दिवस को
रात्रि कहना चाहिए ही ?

मुक्तक

सुविधाओं की लूट चल रही; लूट पेनशन की चलती;
कैसे इसको रोकें वोटर, दाल नहीं उनकी गलती ।
वोटों की भी लूट भयंकर, लूट भयावह नोटों की;
जनता सहती ही जाती, बरसात चल रही चोटों की ।

कर्म-विश्राम

कर्म-परिवर्तन सदा विश्राम देता पूर्णतः;
धन्यता के हेतु वांछित मानवों में है लगन।
धन्य भारत-पुत्र वे थे जो लगन से पूर्ण थे;
सर्वदा ही चाहिए शुचि कर्म का करना चयन।

दिव्य भारत वर्ष की सन्तति रही इस भाँति ही;
आत्मनिर्भर देश हो, करती रही है पूर्ण श्रम।
आज भी प्रत्येक मानव के लिए यह मार्ग है;
कुछ बिना श्रम के मिलेगा, क्या नहीं यह व्यर्थ भ्रम ?

कर्मवीरों के लिए क्या कर्म-रण अविजेय है ?
है कठिन संग्राम जीवन, लक्ष्य रहता शृंग पर।
कर्म के करवाल से ही जीतना संभव इसे;
कर्म - सैनिक शूर करते चूर पर्वत के शिखर।

राष्ट्र भारत ने किया स्वीकार किसके दर्प को
विनय-बल रखते हुए विजयी सदा होता रहा।
कर्म-आयुध के सहारे है सतत जयगानमय;
इस महारणभूमि में क्या समय है खोता रहा ?

कर्म-दीपक यदि रहे जलता, रहेगा ध्वान्त क्या ?
वर्तिका संकल्प की क्या है बुझा सकता पवन ?
प्रबल झंझानिल विजित-असफल रहेगा सर्वदा;
कर्म - पंथी तो निरन्तर है चला करता मगन।

मगन है निज राष्ट्र कर्मों के सबल हिन्दोल पर;
यह विजय-इतिहास कर्मठ देश का बढ़ता रहे।
कर्मवीरों के लिए क्या कुछ कहीं दुर्लंघ्य है ?
देश भारत अभ्युदय के मेरु पर चढ़ता रहे।

राष्ट्रप्रतीक-व्यंजना

कह रहा देश का है प्रतीक—
'केवल प्रतीक मैं नहीं मौन;
मैं जागरूक, जीवन्त - हृदय;
होता स्वरूप है सदा गौण।

जड़ नहीं अशोकस्तंभ कभी;
समझा न जाय इसको प्रस्तर;
यह सदाचार का उत्प्रेरक;
सीमित कर सकता नहीं रबर।

उन्नत विचार, जीवन-दर्शन
सादगी - पूर्णता, कर्म-निरति;
शासन जनसेवामय इच्छित;
हो भोग-विभव से सदा विरति।

सत्ता से बढ़कर है पत्ता,
संपूज्य गया का शुचि पल्लव;
श्रद्धा का वांछित श्राद्ध नहीं;
सत्ता में क्या रहता गौरव ?

समझा यह महावीर ने था;
इस पथ के पथिक बने गौतम;
समझा अशोक ने भी इसको;
किंचित् भी मन में रहा न भ्रम।

सत्ता में है दायित्व निहित;
कर्तव्य निहित है महाकठिन;
चाहिए स्वच्छतापूर्ण कर्म;
उन्नत आचार सदा अमलिन।

जनसेवामय नरवर अशोक
हो गये अमर, चिर गौरवमय;
हो भोगमुक्त, आसक्तिमुक्त;
दे गये सुजनजीवन सुखमय ।

बिक जायें चाहे मुकुट-महल,
भूखा न रहे कोई मानव;
यदि रहे नग्न या रुग्ण प्रजा,
क्या होगा सिंहासन-वैभव ?

शासन में यदि सादगी न हो,
कल्याण-कार्य होंगे बाधित;
उत्कोच रहे यदि विद्यमान,
योजना न होगी कार्यान्वित ।

हो भेदभाव या पक्षपात,
क्या स्वच्छ-दक्ष होगा शासन ?
कथनी से क्या होने वाला ?
अनुशासन का हो अनुपालन ।

जनता पानी में डूबी हो,
क्या शासक नापें उच्च गगन ?
देखें न भूमि पर यदि क्षतियाँ,
कैसे संभव जन - संरक्षण ?

कैसे साहाय्य मिले समुचित ?
कैसे पीड़ा का घटे भार ?
स्थायी रक्षा का यदि उपाय
हो नहीं, बाढ़ तब दुर्निवार ।

सूखा, विभीषिका, बाढ़ों का
क्रम क्या समाप्त हो पायेगा ?
बालुका-बाँध क्या टिक सकता ?
वह सदा टूटता जायेगा ।

बन सकता है क्या सबल भवन
बालू का ? उसको ढहना है;
कागजी नाव क्या चल सकती ?
गल-गलकर उसको बहना ।

यदि रहें उपेक्षित प्रतिभाएँ,
मेधा का यदि हो नहीं मान,
श्रम का यदि समुचित मूल्य न हो,
कैसे होगा भारत महान् ?

रुग्णों की नहीं चिकित्सा हो,
भूखों को यदि न मिले भोजन;
भारत कैसे होगा सुपुष्ट ?
कैसे विकसित होगा जीवन ?

कर्त्तव्य उपेक्षित यदि होंगे,
चलता जायेगा कदाचार,
योग्यता कहाँ संभव होगी ?
दक्षता गिरेगी लगातार ।

यदि नारी-शक्ति उपेक्षित हो,
कन्याएँ यदि हों उपेक्षिता,
सन्ततियाँ क्या होंगी विकसित ?
माताएँ हों यदि पददलिता ।

शोषण के रहते जनता में
क्या शान्ति-प्रेम होंगे संभव ?
बढ़ते जायेंगे अनाचार,
भारत बन जायेगा रौरव ।

जन-जन को यदि हो सुलभ नहीं
सस्ता, विलम्ब से मुक्त न्याय,
बढ़ता जायेगा असन्तोष;
सन्तोष-प्राप्ति का क्या उपाय ?

चेतना समय पर आवश्यक;
भर सके ज्योति से अन्धकूप,
अनिवार्य अन्यथा है विप्लव;
जाने कैसा होगा स्वरूप ?

यदि शान्ति और सुख हैं अभीष्ट,
करना होगा व्यापक सुधार;
शुभ शान्ति-क्रान्ति करनी होगी;
भारत का होगा नवोद्धार ।'

निर्झर-व्यक्तित्व

प्रेमनिर्झर सरसतामय देश भारत अनवरत;
प्रीतिरस-परिपूर्ण हो; क्यों रक्त की धारा बहे ?
राष्ट्र भारत के लिए अवरोध कोई भी न हो;
क्यों भला मतभिन्नता से क्षोभ कोई भी रहे ?

एकता शाश्वत जहाँ अनिवार्य होती सर्वदा,
भिन्नता भी क्या नहीं है सहज-स्वाभाविक परम ?
राष्ट्रजीवन-सरित के उपकूल दोनों पार के;
कूलता की एकता सर्वत्र है रहतो चरम।

द्वन्द्व-दुविधा से प्रगति होती नहीं संभव कभी;
चाहिए जीवन सदा एकत्वपूर्ण, प्रवाहमय;
देश चलते हैं निरन्तर ऐक्य और समत्व से,
पतन या कठिनाइयों का है वहाँ रहता न भय।

भूमि समतल चाहते हैं पथिक पथ पर सब तरफ;
पंथ तो सम-विषम से भयभीत होता ही नहीं;
जो कृषक कृषि-कर्म के प्रति है समर्पित कर्मरत,
भूमितल यदि हो विषम, क्या बीज बोता ही नहीं ?

सतत हो लौ से लगन तो तिमिर भी बाधक नहीं,
लगन के आलोक से घटता-सिमटता-भागता,
नींद क्या उसको सुला सकती कभी है सेज पर ?
जो मनुज निज कर्म-पथ पर है निरन्तर जागता।

जागरण का भी अजस्र प्रवाह नर को चाहिए;
जागरूक स्वतंत्रतामय लोकतंत्र सदैव हो;
चाहिए विस्तार पूर्ण समत्वमय मनुजत्व का;
राष्ट्रकर्म-प्रवाह भी तो सतत और तथैव हो।

समन्वयी व्यक्तित्व

भारत है सर्वसमन्वयमय,
क्यों हो विग्रह, विघटन, तनाव ?
अद्वैत-द्वैत का समन्वयी,
आस्तिक-नास्तिक में क्यों दुराव ?

रहता ज्यों सत्य निशा में भी,
वह नहीं दिवस में परिसीमित;
चलता जाये भारत अबाध,
पथसमन्वयी जो चिरपरिचित ।

षड् ऋतुओं में है व्याप्त सत्य;
वह कहाँ एक ऋतु में केन्द्रित ?
रवि-शशि में ही आलोक नही;
वह नक्षत्रों में भी सुनिहित ।

ज्यों सत्य सर्वदा भूमि-गगन,
साधार और ज्यों निराधार,
वैसे ही सगुण और निर्गुण,
साकार और हैं निराकार ।

हो शयन-क्षेत्र पर्यंक मात्र,
है कर्म-क्षेत्र सर्वत्र सदा ;
चिर प्रधानता श्रम-कर्मों की;
क्या कर्म-विरति होती सुखदा ?

अन्तस्तल अपना है निर्गुण,
तो सगुण देश-विस्तार अखिल;
कर्मों के पथ भी दोनों ही ;
वे रहें शुष्क अथवा पंकिल ।

गति को अवरुद्ध न करे द्विधा;
दिग्भ्रमित राष्ट्र हो कभी नहीं;
कर्मों का दीप रहे जलता,
तो पंथ मिलेगा सदा सही।

उलझन प्रमाद में ही रहती;
कर्मों में रहती क्या उलझन ?
विघ्नों को विजित करेगा ही,
यदि हो नर का कर्मठ जीवन।

मुक्तक

सेवा का दे नाम ठगी को, जनता को ठगते जाते हैं;
राष्ट्रपताका की क्या चिन्ता ? दलगत झंडा फहराते हैं।
स्वार्थ-साधकों की जमात ही अधिकाधिक है लाभ उठाती;
सब्ज बाग दिखला, जनता को बार-बार है ठगती जाती।

अनन्त ऊर्जामयता

शाश्वत अनन्त ऊर्जामय हैं
पर्वत, सागर, सरिता, निर्झर,
मधुवन, जनपद, जलकण, रजकण,
जन-जन; भारत प्रतिभा-उर्वर।

लगती मरुता है जहाँ वहाँ
भी है प्रतिभा की उर्वरता;
मेधा-मंडिता मेदिनी में
भारत की रहे स्वनिर्भरता।

संकल्प एक है जनगण का,
चिर देश-एकता-संरक्षण;
उद्देश्य नहीं आक्रमण कभी;
करना अवश्य ही प्रतिरक्षण।

है भक्ति एक चिर देशभक्ति;
है कर्म सर्मापित अविरत श्रम;
कृषि-औद्योगिक ऐश्वर्य एक;
है एक ज्ञान-परिदर्शन-क्रम।

महिमा सदैव है एक व्याप्त,
हिमगिरि-उन्नत भारत-महिमा;
दिनमान सदृश हैं ओज-तेज;
सागर-गभीर भारत-गरिमा।

क्या भेद पूर्व का, पश्चिम का?
क्या दक्षिण अथवा उत्तर का?
सुर सात, किन्तु संगीत एक;
वैविध्य मात्र कंठस्वर का।

जो गंगा, गोदावरी वही;
लोहित, झेलम, गंडक, सतलज,
कृष्णा, कावेरी, महानदी,
नर्मदा, सिक्त चिर भारत-रज।

भारत अनेकतामय विशाल;
एकत्व-शक्ति से है अजेय;
न्योछावर इसपर तन-मन-धन;
क्या देशभक्ति में है अदेय?

कर्त्तृत्व आत्मनिर्भरतामय;
भारत-जीवन का एक मंत्र;
भारत - स्वतंत्रतारक्षा - व्रत—
से परिसबलित हो लोकतंत्र।

व्यक्तित्व राष्ट्र का कीर्त्तिमान;
नेतृत्व राष्ट्र-उन्नायक हो;
साहित्य-भक्ति भी देशभक्ति,
कवि देशभक्ति का गायक हो।

हिमालय-व्यक्तित्व

व्यक्तित्व हिमालय भारत का
प्रक्षालक हिन्द-महासागर ;
अगुलि समान हैं दिक्-दिक् में
निःसृत प्रपात, हिमनद, निर्झर ।

मधु विपिन-राजियों की असंख्य
रोमावलियाँ हैं परिशोभित ;
नानाविध जन्तु-विहंगों से
मधुमय अरण्य हैं परिमंडित ।

प्रिय अखिल हरित भारत-मधुवन;
हों भिन्न भले ही क्षेत्र-नाम;
नाना उपासना-विधियों से
पूजित भारत है पूर्णकाम ।

ज्यों एक ध्वजा है भारत की,
ज्यों एक देश का संविधान,
त्यों एक राजभाषा हिन्दी;
है एक निखिल भारत महान् ।

बल अनेकता में कहाँ निहित ?
सन्निहित एकता में शाश्वत;
नाना भाषाओं-क्षेत्रों में
है एक-अखंड-अमर भारत ।

सांस्कृतिक विधाएँ भी अनेक;
भारत-संस्कृति है किन्तु एक;
है एक राष्ट्र-संरक्षण-बल;
सर्वदा एक भारत-विवेक ।

यदि स्वयं आत्मनिर्भर न रहे,
तो क्या दे सकता है स्वदेश ?
वह बाध्य रहेगा सहने को
अतिशय अभावमय दैन्य-क्लेश ।

यदि रहे आत्मनिर्भर भारत,
होगी परहित-कामना सफल;
अन्यथा कामना भी दुर्बल;
चिर बने राष्ट्र उद्योग-सबल ।

साहित्य सदा करता जनहित
रख दृष्टि समस्त दिशाओं में;
जो सदा सन्निहित रहता है
मेधाओं में, प्रतिभाओं में ।

शाश्वत भारत-वाङ्मय-वारिद
करता नवजीवन अमृत-वृष्टि;
चिर सत्यं-शिवं-सुन्दरम् से
मंडित करता सम्पूर्ण सृष्टि ।

सद्भाव - चेतना - सहृदयता -
करुणा, मनुष्यता का दाता ;
है बना हुआ युग-युग से जो
प्रज्ञा-सुकर्म का उद्गाता ।

नव-नव प्रयोजना-रचना से
करता जन-जन को प्राणान्वित ;
शुभ शील-ज्ञान-गरिमा-महिमा—
से करता युग को आलोकित ।

●

मुक्तक

कठिन परिश्रम करने वाले कृषक-श्रमिक हैं भूखे रहते;
सुख-सुविधा जो लूट रहे हैं, निज को जनसेवक हैं कहते ।
भ्रष्टाचार भयंकर चलता, जीवन की बढ़ती दूभरता;
कठिनाई जनता की बढ़ती;बढ़ती कलुषभूमि-उर्वरता ।

क्या भला अन्य कुछ है बनना ?
क्या भला अन्य कुछ है पाना ?
चिर सत्य कि जैसे है आना,
वैसे ही जग से है जाना ।

यश के रक्षक-वर्द्धक सुकर्म;
सर्वोपरि है भारत का यश;
व्यक्तित्व हिमालय हो जन का;
हो सारतत्त्व-मधुगान सरस ।

मुक्तक

सत्य-कथन हो रहा उपेक्षित, चाटुकार होते सम्मानित;
लूट साधनों की, सत्ता की; पग-पग पर सज्जन अपमानित ।
किसे भला चिन्ता दुखियों की ? लूट मचानेवाले सुखिया;
खानपान को मुख अनेक जो रखते, वे जनता के मुखिया ।

ऐरावत-मृगेन्द्र

तन ऐरावतवत्, किन्तु नहीं
भारत-मन में हो अहंकार;
मस्तक मृगेन्द्रवत् हो निर्भय;
पंकजवत् जीवन निर्विकार ।

भारत-सरोज का रहे सदा
व्यापक तड़ाग, जल पूर्ण विमल;
हो विनय-शक्ति से रहित नहीं
करुणा-वरुणालय अन्तस्तल ।

शासन का तन चाहे विशाल,
भारी न किन्तु हो शिरोभार;
सम्पुष्ट रहें अवयव समस्त;
बाधाओं पर हो चिर प्रहार।

कर्तव्यों का सम्पादन ही—
सर्वोपरि गौरव-गरिमा है;
नर का वैभव-बल क्या महान् ?
सत्कर्मों की ही महिमा है।

भारत का बल-वैभव चरित्र—
उनका, जो थे सत्कर्मोन्नत;
पद या धन से थे बड़े नहीं;
थे सत्य-न्याय-रक्षक अविरत।

है निहित सत्य में सुन्दरता;
जो सत्य नहीं, वह सुन्दर क्या ?
यदि सत्य नहीं, तो क्या मंगल ?
हो स्वच्छ नहीं, तो निर्झर क्या ?

चाहिए स्वच्छता का प्रवाह;
भारत महान् निर्मलता से;
कोकिल होते हैं गीत-मधुर;
चन्द्रिका मृदुल उज्ज्वलता से।

ऐरावत या शार्दूल रहे,
भारत में वांछित गतिमयता;
नय-अनुनय-बल से बढ़ती ही
जाती भारत की निर्भयता।

●

मुक्तक

पर्यावरण बनाना कहते, अन्तःकरण बिगाड़ रहे हैं;
अपना महल बनाने वाले बस्ती बसी उजाड़ रहे हैं।
बालू से ही भवन बनाते, सड़क जेब में बनवाते हैं;
पानी ही जनता को देते, दूध स्वयं ही पी जाते हैं।

मन्दराचल

मन्दराचल देखता तो है मुझे रोमांच होता त्वरित ही;
सिन्धु-मन्थन के लिए होगा नचाना मन्दराचल।
यों नहीं संभव कभी अभियान होते ऐतिहासिक;
चिर हिमाचलवत् रहें निज देश के संकल्प-करतल।

सुदृढ़ता के निकष बनते हैं अखण्डित पर्वतों के;
रत्न की उपलब्धि के हित चाहिए क्या उदधि खंडित ?
सर्वदा आदित्य के चक्कर लगाती मेदिनी ही;
भूमि-खण्डों से कभी होता कहाँ यह लक्ष्य साधित ?

दीप या नक्षत्र-मण्डल या शशांक दिवस न देते;
अंशुमाली ही सदा देता दिवस आलोकमय है।
उच्चतम परिकल्पना में ही निहित है ध्येय उत्तम;
पूर्ण यदि साहस रहे तो सुलभ हो पाती विजय है।

मन्दराचल को नमन है, देवघर का नमन करता;
है जसीडीह तक रही इतिहास में है भूमि पावन;
अंगभूमि सदैव ही महिमा-सुगरिमा-मंडिता है;
क्या नहीं विक्रमशिला भी है रही गरिमा-निकेतन ?

मगध-नालन्दा सदा बल-ज्ञान-गरिमामय रहेंगे;
सतत मिथिला-भोजपुर का भी नहीं क्या पुण्यजीवन।
शौर्य-संस्कृति-भूमि; वैशाली कभी पीछे कहाँ है ?
क्या कभी कान्हू कि बिरसा ने किया स्वीकार बन्धन ?

कुँअर सिंह सुवीरवर थे देशभक्तों के शिरोमणि;
'पीर' भी तो कम नहीं थे देश के स्वातंत्र्य-रण में;
थीं महावीरांगना लक्ष्मी लड़ी मर्दानगी से;
और हजरत महल भी पीछे रहीं क्या मुक्ति-प्रण में ?

था दिया पाण्डेय मंगल ने महत्तम शौर्य-परिचय;
था प्रथम स्वातंत्र्य-संगर देश का रोमांचकारी;
देशभक्त महान् थे वे शाह भी तो 'जफर' शायर;
गर्व इन सब पर करेगी क्या नहीं जननी हमारी ?

राष्ट्र भारत का सदा चलता रहेगा शक्ति-गौरव;
देश के प्रति भक्ति में चिर वीर जन होंगे समर्पित;
क्या कभी सद्वृत्तियों की श्रृंखला का अन्त होगा ?
देश भारतवर्ष शाश्वत ही रहेगा गौरवान्वित।

●

मुक्तक

नग्न नृत्य पशुता का होता, मानवता मिटती जाती;
मिली भगत ही, साँठगाँठ ही दही-मलाई कुल खाती।
हाहाकार सुनाई पड़ता जनगण की पीड़ाओं का;
प्रतिपल होता दमन जा रहा जीवन की इच्छाओं का।

प्रलयानल भारत

पालता भ्रान्ति कोई न रहे,
भारत केवल हिमशीतल है;
शीतल सुहृदों के लिए मात्र;
अरियों पर तो प्रलयानल है।

हिमपुंज हिमालय जहाँ, वहीं
बड़वानल हिन्द-महासागर;
आक्रमण किया करते कायर;
भारत चिर प्रतिरक्षक नाहर।

जो आँख उठे इसके ऊपर,
वह कभी नहीं रह सकती है;
भारतमाता क्या कभी अनय
या अनाचार सह सकती है ?

कर सकती हैं संग्राम प्रखर;
इसकी सन्ततियाँ हैं प्रवीर;
है सतत प्रज्वलित प्रलय-ज्वाल;
जिन सरिताओं में है सुनीर।

यदि महासिन्धु गर्जनमय है,
तो अमृत - प्रवर्षी है अम्बर;
सम्पूर्ण देश है रत्न-भूमि;
सिकता का कण-कण चिर उर्वर।

अभियानपुंज आत्माभिमान
मंडित यह राष्ट्र सुसन्ततिमय;
हैं देशभक्त जन जहाँ, वहाँ
करता प्रवेश क्या किंचित् भय ?

जैसे सन्नद्ध सुसैनिक हैं,
वैसे सुनागरिक देश - भक्त;
परमाणु-बमों से बढ़कर हैं
निज प्राण-बमों से जो सशक्त।

सेना में सीमित नहीं शक्ति;
वह संरक्षित है जन-जन में;
संकल्प-शक्ति है चिर अजेय;
उत्साह-उत्स है कण-कण में।

आयुध समस्त रखता, परन्तु
कर्मायुध भी सर्वोत्तम है;
कृषिकर्म-समुन्नति-गति अविरत;
मति सुमति, समर्पित चिर श्रम है।

रखता अजस्र जीवन-प्रवाह;
योद्धा-यौवनमय है जनबल;
निज रक्षा में शाश्वत समर्थ,
पीड़ित वसुधा-जन का सम्बल।

कृषि-औद्योगिक उत्पादनमय
जो राष्ट्र स्वनिर्भर सदा रहे,
चिन्ता क्या है निज रक्षा में
चाहे जितना भी रुधिर बहे ?

यों शोणित सदा अमूल्य विभव;
क्या दुरुपयोग इसका करना ?
प्रति कण की रक्षा से सदैव
कर्त्तव्य-कलश को है भरना।

●

मुक्तक

क्या जिजीविषा ? मानव तो, कुछ नहीं बोल भी पाते हैं;
भयाक्रान्त रहते प्रतिपल, गोलियाँ अकारण खाते हैं।
पर्यावरण शुद्ध क्या होगा ? शुद्ध नहीं ओषधि मिलती;
कवि-कोकिल क्या गान करें ? जीवन की कली नहीं खिलती।

सक्रिय शांतिप्रिय

निष्क्रियता में नहीं, सदा भारत है सक्रियता में,
शान्तिप्रिय है, किन्तु शान्ति क्या रहती निष्क्रियता में ?
निगुंटता भी है सक्रिय, चिर तटस्थता भी सक्रिय;
निष्पक्षतासहित रहता निरपेक्ष न्यायप्रियता में।

सदा अनाक्रामक रहना, आक्रमण नहीं सहना है;
अनाक्रान्त रहने को आयुधमय सदैव रहना है;
न्याय-ध्वजा लेकर चलना है, अनय भला क्या सहना ?
न्याय के लिए शोणित जितना बहे; उसे बहना है।

भारत जितना हिमशीतल है, उतना ज्वालामय है;
ओज-तेज-बल-पुंज, अजयता के कारण निर्भय है;
देशभक्त जन-जन के कारण रक्षित संप्रभुता है;
नहीं नागरिक देशभक्त जो, उनसे ही तो भय है ।

देशभक्तिमय सुनागरिक होते कर्त्तव्यपरायण;
साधन-उत्पादनमय रखते कर्मठ सारा जीवन;
पराधीनता से बढ़कर कोई होता क्या बन्धन ?
स्वतंत्रता सर्वोपरि है जन-जन का दृढ़ अनुशासन ।

रहें वीर नर-शक्ति, कि वीरांगना सतत नारी हो;
जनता हो ऐसी जिसने हिम्मत न कभी हारी हो;
करे समर्पित जन-जन तन-मन-धन तो राष्ट्र सुरक्षित;
क्या अदेय है ? जब स्वदेश को देने की बारी हो ?

स्वतंत्रता ही जीवन है, क्या है कदापि बन्धन में ?
सदा चाहिए यौवन-ज्वाला मानव के जीवन में;
कृषि-औद्योगिक-वैज्ञानिक उत्पादन हो अधिकाधिक;
भारत पाता ही जायेगा विजय किसी भी रण में ।

कर्म-व्यक्तित्व

क्या है सीमा-अवधि कर्म की ?
क्या वह सतत-अनन्त नहीं ?
धरा वर्ष भर तप करती तो
मिलता मधुर वसन्त कहीं ।

मिलना तो फल है, जिसमें
इच्छित होती आसक्ति नहीं;
फलासक्ति से रह पाती
समुचित सुकर्म-अनुरक्ति नहीं ।

भारत भी है वही चाहता,
जो सुकर्म-सत्कर्म रहे ;
जीवन गति अवरुद्ध न हो, यदि
सदा कर्म की धार बहे ।

अनवरुद्ध बढ़ते ही जायें
चिर सुकर्म-सत्कर्म-पथिक;
नियमित नियत कर्म-सम्पादन
सतत रहे होता दैनिक ।

पृथ्वी की गति भी तो नियमित;
चलती ही रहती अविरत;
और नियमतः आते प्रतिदिन
कालचक्र के पल शाश्वत ।

घटिका, प्रहर, याम जो भी हो,
कर्मचक्र जग का चलता;
कर्म हेतु ही तो मानव का
जीवन-दीपक है जलता ।

करें शोध-अभियान समुन्नत;
सुप्रयत्न करते जायें;
भारत शाश्वत विजयपूर्ण हो;
गीत राष्ट्र-जय के गायें ।

खंडित क्यों होगी स्वतंत्रता ?
करते चलें प्रगति-वर्द्धन;
भारत रहे कर्म - मंगलमय;
पाता जाये नवयौवन ।

●

मुक्तक

सम्भव क्या जीवन-विकास ? मसली जाती तरुणाई है;
बच्चे बिलख रहे भूखे; ले रही मृत्यु अँगड़ाई है ।
माताओं का स्वास्थ्य कहाँ ? बच्चे उनके मरते जाते;
क्या होगी शिक्षा उन्नति बच्चे जब दवा नहीं पाते ?

एकात्म व्यक्तित्व

जाति-पाँति से, क्षेत्रवाद से
मुक्त राष्ट्र हो; बने महान् ;
यही सदा भारत-स्वरूप है,
निहित इसीमें गौरव-गान ।

गरिमामय, महिमामय भारत—
खण्डित हो तो होगा क्षुद्र;
सम्प्रदाय-भावना गौण हो;
मुख्य राष्ट्र-चेतना-समुद्र ।

निम्न कर्म से मनुज निम्न है;
सम्प्रदाय या जाति नहीं;
उच्च कर्म में निहित उच्चता;
सदा स्वच्छता-पंथ सही ।

रहे चिरन्तन कर्म-स्वच्छता;
कर्मों में दक्षता रहे;
जन-जन इसका व्रती बने तो—
भारत क्या दुख-दैन्य सहे ?

समता रहे समस्त जनों की;
नर-नारी की समता हो;
अमृत-सिन्धु होगा चिर भारत;
क्यों यह घोर विषमता हो ?

भारत की संप्रगति सुनिश्चित;
कुल व्यवधान हटायेंगे;
रवि-मयंकमय कर्म-प्रगति की,
दिवस-निशा-छवि लायेंगे ।

यह संकल्प रहे जन-जन का;
कर्म-रूप में हो परिणत;
तो भारत होगा अवश्य चिर
वसुन्धरा में गर्वोन्नत ।

अपना क्यों अभिमान करें हम ?
सदा राष्ट्र-अभिमान रहे ;
विघटन के अभियान रहें क्यों ?
सतत ऐक्य-अभियान रहे ।

ज्यों तरुगण एकात्म विपिन से ;
बिन्दु-बिन्दु ज्यों सागर से;
ज्यों एकात्म सुमन-माला से ,
तारक-दल ज्यों अम्बर से ;

इसी भाँति हों अनुस्यूत चिर
कुल भारत-नरनारी-गण ;
सकल सिद्धि-वरदायक होंगे
भारत के गिरि-वन-रजकण ।

चिर पयोधि भी मधुमय होगा ;
निखिल राष्ट्र होगा सुखमय ;
अखिल दिशाओं में प्रिय भारत
होगा ही गतिमय निर्भय ।

पंक निखिल होगा ही पंकज,
निष्कलंक चिर नारी-नर ,
सदा चेतकर-हितकर होगा
भारत-जनगण अविनश्वर ।

कण-कण की यह रहे पूर्णता ;
तो अपूर्णता-रूप कहाँ ?
कार्यान्वित होगा अवश्य ही
'जहाँ चाह, है राह वहाँ ।'

लिखता है कवि देश के लिए ;
अपने लिए नहो लिखता ;
वरदानी, सातिशय सुखद है ,
हो सामान्य भले दिखता ।

शिशिर-ग्रीष्म की चिन्ता क्या है ?
कोकिल को तो गाना है;
छन्द-गान से निखिल राष्ट्र में
सुख-मधुमास बुलाना है ।

कोई भी जन रहे सुप्त क्यों ?
चिर चैतन्य जगाना है;
प्रति पल पावन आह्वानों से
नया जागरण लाना है ।

मुक्तक

मृत्यु जन्म लेती है प्रति पल, जीवित जन्म नहीं पाते;
जन्म प्राप्ति से पहले शिशु कितने भ्रूणों में मर जाते ।
बच जाते विकलांग पुत्र, पर सांग क्षुधा से मरते हैं;
पौरुष सम्भव कहाँ ? निरन्तर जन घर में भी डरते हैं ।

प्रीति-सरिता

अन्तस्तल में सदा रहेंगे मेघ प्रीति के वांछित;
नहीं अनल आतंक-उग्रता का जल दे पायेगा;
जल जायेंगे प्रीति-शान्ति के यदि वन-उपवन सारे,
कैसे वारिद वृष्टि करेंगे ? सिन्धु सूख जायेगा ।

सद्भावना-मनुजता-सहृदयता के स्रोत कहाँ तब ?
हृदय-उदधि ही जल जाये, क्या बचे रहेंगे निर्झर ?
गंगा, सतलज; कृष्णा, कावेरी का जल सूखेगा;
तृषित-बुभुक्षित भारत होगा, हृदय बनेंगे प्रस्तर ।

सुमन-अन्न फल कहाँ मिलेंगे ? मिल न सकेंगे पल्लव;
कहाँ वसन्त मिलेगा ? किसलय दे न सकेगा पतझर;
मधुऋतुमय मधुवन में ही तो कोकिल कूजित होंगे;
मानव क्या जीवित होंगे ? मृत होंगे पक्षी सत्वर ।

बच न सकेंगे जीव-जन्तु, क्या ग्राम-नगर बच सकते ?
जीवनधाराएँ विशाल भारत की जल जायेंगी;
कौन बचेगा महानाश की उस जलती ज्वाला में ?
क्या श्मशान में हरियाली जीवन की आ पायेगी ?

क्या अपराध भला है प्यारी भारत वसुन्धरा का ?
तन - मन - धन सर्वस्वदायिनी प्यारी भारतमात ;
भला जलाना जीवित माँ को क्या सुखदायक होगा ?
सन्तानों का कलह भला क्या माँ को सुख दे पाता ?

भारतमाता नद-निर्झरपूर्णा पुकारती शाश्वत;
'रहो प्रेम एकता शान्ति से, न हो कलह कोलाहल ।'
माँ को कैसे अन्न - वस्त्र दे सकती प्यारी सन्तति ?
सतत चीरती जायेगी यदि पट-अंचल-अन्तस्तल ।

क्या पीड़ित सेवित होंगे यदि नहीं प्रीतिमय अन्तर ?
सेवा के हैं बीज अंकुरित होते स्नेह - सलिल से;
आवश्यक हैं सदा स्वच्छता - सहृदयता - मानवता;
करुणा-कमल प्रीति-सर से जन्मते, न पथ पंकिल से ।

भारतमाता रहे शाद्वला, शस्य-श्यामला शाश्वत;
रखना होगा इसे अखंडित प्रीति, एकता - बल से;
मरु हो सकती कभी नहीं, यदि रहे स्नेह अन्तर में,
जीवन चिर सुखमय होगा ही अन्न-सुफल-मधुजल से ।

मुक्तक

क्रीड़ा क्या सम्भव होगी ? है पीड़ा का अम्बार लगा;
महानाश-लीला क्या सकती है जीवन का प्यार जगा ?
महामरण की कुरूपता में जीवन का सौन्दर्य कहाँ ?
मंगल की क्या बात ? अमंगल का प्रतिपल है नृत्य जहाँ ?

अच्युत जीवन

कर सकता है च्युत कौन इसे;
भारत का चिर अच्युत जीवन;
प्रच्छन्न समस्त सरक्षणमय;
अविरत उत्पादनमम साधन ।

प्रच्छन्न शक्तियाँ हैं अदृश्य,
पर यथासमय होतीं गोचर,
हैं सिंह कहाँ मृगवत् चलते ?
उनसे ही विजित निखिल वनचर ।

चिर सर्वशक्ति-सम्पन्न, सबल,
कर्त्तव्यपूर्ण सैनिक जवान;
उद्योग-श्रमिक उत्पादनमय;
पोषण-उत्पादनमय किसान ।

यदि मितव्ययी हों कुल मानव,
तो क्या हो सकता है अभाव ?
विद्यालय हों या कार्यालय,
चाहिए सदा कर्मठ स्वभाव ।

जो देश - भक्त होते हैं जन,
वे नहीं स्वार्थ-सुविधाकामी;
शासक यदि हों उत्कोच-पथिक,
क्या होगी मति-गति आयामी ?

सांसद हों या कि विधायक हों,
क्यों हों सुविधाओं के अनुचर ?
वे तो जनता के अनुचर हैं;
क्यों रहे दृष्टि सुविधा-पथ पर ?

प्रच्छाय-कामना लिये सतत
वे क्यों प्रच्युत होंगे कदापि ?
क्यों सुविधाएँ वे लें विशेष
जब नहीं कार्यरत हों तथापि ?

न्यायालय हों कि विधानालय,
सर्वत्र अपेक्षित कर्म-निरति;
अवरुद्ध कौन कर सकता तब
भारत की गरिमामयी प्रगति ?

वाङ्मय सदैव ज्योतिर्मय हो;
उसका सदैव हो अग्रगमन;
अनुगमन करे वह क्यों कदापि ?
चलता हो पंथ - प्रदर्शक बन ।

सुविधा हो या कि असुविधा हो,
पथ से होता यदि नहीं भ्रष्ट,
होता साहित्य तभी सार्थक;
होगा न प्रलय से भी विनष्ट ।

साहित्यकार कर्त्तव्य-निरत;
उसको हो भला प्रलोभन क्या ?
क्यों चाटुकार, विज्ञापक हो ?
उसको सत्ता का बन्धन क्या ?

देगा समाज को शक्ति वही,
जो छिन्न कर सकेगा बन्धन;
क्या सम्प्रदाय, दल, जाति-पाँति—
के बन्धन में रहते सज्जन ?

मुक्तक

वमन खिलाना क्या सम्भव है ? वमन फँसता जाता है;
दम घुटता है जीवन का, पर मरण नाचता आता है।
महात्रास में रहते हैं जन, कठिन साँस लेना रहता;
शासन-संरक्षणविहीन मानव कितनी पीड़ा सहता ।

जाति-गरल

सुनता हूँ मैं चौराहों पर
लग रहा जाति का नारा है;
या सम्प्रदाय-उन्माद घोर;
यह तो भीषणतर धारा है।

बँट रहे मुहल्ले, नगर ग्राम,
सन्निकट पड़ोसी टकराते,
मैं समझ न पाता टक्कर से
क्या कुछ भारतवासी पाते ?

शिक्षा का हो व्यापक प्रसार;
मेधा - प्रतिमा को हो विकास;
क्या निहित इसीमें शक्ति नही ?
क्यों हो सद्भावों का विनाश ?

सारी जन - संख्या हेतु कहाँ
होंगी सरकारी नौकरियाँ ?
वाणिज्य और उद्योग सुलभ
सकते हैं करा नई गलियाँ।

क्या निर्धनता है जाति-निहित ?
क्या क्षुधा जाति को ही लगती ?
क्या रोग जाति को ग्रसते हैं ?
अर्हता जाति में क्या जगती ?

प्रत्येक तृषित को मिले उदक,
प्रत्येक बुभुक्षित को भोजन;
श्रम को चिर समुचित मूल्य मिले,
प्रत्येक हेतु कर्मायोजन।

हों किसी जाति के भले विटप,
सूखते हुए का हो सिंचन,
तरुवर प्रत्येक फले-फूले;
सबका हो समुचित संरक्षण।

सम नियम न्याय के हित वांछित;
पा सकें न्याय सारे पीड़ित;
कोई क्यों हो जन का शोषक ?
कोई क्यों हो बँधुआ-शोषित ?

यदि होगी केवल वोट-दृष्टि,
तो निर्णय क्या होंगे समुचित ?
क्या तुष्टीकरण सुवांछित है ?
सत्ता क्या हो बल से अर्जित !

होगी उपेक्षिता सज्जनता;
प्रश्रय पायेगी दुर्जनता;
तो दुष्टीकरण बढ़ेगा ही,
लांछन पायेगी ही सत्ता।

बढ़ रहा विश्वविद्यालय तक
यह जाति-पाँति का विष घातक;
क्या नहीं उमड़ता जायेगा
कार्यालय से न्यायालय तक ?

सम्यक् चिन्तन आवश्यक है;
निर्णय सदैव निष्पक्ष रहे;
सत्ता न रहे लोलुपता में;
शासन चिर स्वच्छ-सुदक्ष रहे।

मुक्तक

कवि लिखते हैं, किन्तु नहीं छपने के साधन पाते हैं;
गल जाने को, घुल जाने को ग्रन्थ छोड़कर जाते हैं।
किसी भाँति यदि छपवा पाते, कुछ ग्राहक (?) ऐसे लेते;
धन्यवाद भी जो आधे मन, आधे मुँह से ही देते।

शान्ति-उत्पादन

क्या भला हो समर-उत्पादन कभी भी ?
शान्ति - उत्पादन सदा होता सुखद है;
नाश ही अनिवार्य करता आक्रमण है;
ध्वस करना क्या कभी आनन्द-प्रद है ?

कष्ट से साधन सदा होते विनिर्मित;
चाहिए क्या व्यर्थ ही उनको मिटाना ?
युद्ध से सद्दाम को क्या कुछ मिला है !
खमियाजा युद्ध का होगा चुकाना।

त्यागता क्या राष्ट्र भारत बुद्धिमत्ता !
अमृत प्रज्ञामय सदा मानस - पटल है;
शान्ति - वारिदपूर्ण रहता है हिमालय;
ध्येय चिर निर्वेदमय इसका अटल है।

क्षणिक ही क्या क्षति नहीं आक्रान्त की है ?
मानता, तत्काल व्यर्थ कुवैत पीड़ित,
आक्रमण से लाभ क्या संभव कदापि इराक का है !
क्या नहीं क्षतिग्रस्त वह अतिशय, पराजित ?

राष्ट्र भारत को विदित परिणाम रण का;
आक्रमण से इसलिए रहता विरत है;
अन्यथा ज्वालामुखो से भय कहाँ है !
आत्मरक्षा हित अभय निर्द्वन्द्व संगर में निरत है।

आक्रमण-उन्मुक्त भारत सर्वदा जय प्राप्त करता;
शुद्ध अन्तःकरण क्या होता विजित है ?
बल-पराक्रम चिर विजय के योग्य रखता;
सत्य यह सम्पूर्ण वसुधा को विदित है।

अमृतमयता

सर्वदा जीवन बृहत् सुनिवेशमय हो;
है समुद्यम-बल सफल वांछित अधिकतम;
उत्तरोत्तर चाहिए बढ़ना मितव्यय;
क्या नहीं हों उत्तरोत्तर बचतमय हम ?

चाहिए ही राष्ट्र में उद्योगमयता;
सर्वथा संवृद्धि यह जीवनमयी है;
आत्मनिर्भरता-प्रगति होती इसीसे;
विश्व में संस्तुत्य देश मितव्ययी है।

चाहिए विज्ञान-धन भी, अर्थ-बल भी;
सफलता के हेतु आवश्यक अखिल बल;
स्वास्थ्य, शिक्षा, श्रम, सभी पर्याप्त वांछित;
बन सकें हम अबल के भी सबल सम्बल।

सर्वदैव स्वदेश प्राण-विकासमय हो,
श्रम, समुद्यम और हों सुनिवेश अविरत;
राष्ट्र भारत क्षुद्र शाखामृग नहीं है;
अमृत प्राण सदैव ही हो देश भारत।

क्या भला सीमा कहीं अनुभूतियों की ?
काव्य के होते नहीं सीमित विषय हैं,
कल्पना-संचेतना - सीमा नहीं है,
क्या कभी सीमित मनुज का अभ्युदय है !

राष्ट्र भी इस भाँति ही वांछित सदा है;
बिन्दु-अम्बुधि में कहाँ अन्तर गुणात्मक ?
व्यष्टि और समष्टि भी इस भाँति ही हैं,
चिर गुणात्मक ऐक्य से हैं उभय सार्थक।

सत्-चित्-आनन्द-राष्ट्र

सत्-चित्-आनन्द - विमण्डित जो
था रहा राष्ट्र मेरा पावन,
वह रहे सर्वदा ही ऐसा;
हो त्रिविधशक्ति-सबलित जीवन।

क्या और भला मैं दे सकता ?
कुछ भी तो मेरे नहीं पास,
मैं हूँ प्रदान - साधन - वंचित,
करता हूँ लेखन का प्रयास।

मेरा सपना नवभारत का
जाने कब होगा कार्यान्वित ?
कब कृषक-श्रमिक शोषण-विमुक्त ?
कब सुखी सर्वहारा पीड़ित ?

कहते हैं मध्यम वर्ग जिसे,
वह भी तो है पिस रहा सतत;
जाने कब समतामय होगा
बापू के सपनों का भारत ?

कब भारत की भाषा हिन्दी
बन पायेगी स्व-राजभाषा ?
कब राष्ट्र पूर्ण कर पायेगा
सांस्कृतिक मुक्ति की अभिलाषा ?

सत्-चित्-आनन्द-त्रिविध बलमय
कब होगा प्रिय भारत स्वतंत्र ?
कब जनविहंग-मुखरित होगा
नव पर, नव स्वर का अमृत मंत्र ?

चिन्ता भारत की छवि की है;
चिन्ता न तनिक अपनी छवि की;
क्या और भला चिन्ता वांछित
होती है देशभक्त कवि की ?

हूँ आज, किन्तु कल जाना है;
भारत मेरा हो चिर सुखमय;
हो चिर जीवनमय-यौवनमय;
चिर कर्मयोग - बल-साधनमय।

अधरों पर चिर मधुमास हँसे;
नयनों में कभी न हो सावन;
सन्तुलित शरत-हेमन्त सदृश
चिर हरित-भरित हों भारत-वन।

वर्षा हो सदा यथावश्यक,
हों सदाचारमय भारत-जन;
उत्कोचमुक्त, कर्त्तव्यनिरत,
सर्वदा रहे भारत - शासन।

हो पायेगा पूर्णतः मुक्त
कब तक बन्दी नारी-समाज !
शिशुओं को मिल पायेंगे कब
कवि-स्वप्नों के अनुरूप साज।

संगीत - नृत्य - सुख - परिमण्डित
भारत जीवन हो चिर अक्षय,
जाग्रत, जीवन्त, समुन्नतिमय
हो महाप्राण भारत निर्भय।

●

मुक्तक

कुछ ही करने को पद लेते, अधिक व्यक्ति केवल होते;
पदारूढ़ होकर मस्ती से निरवधिवत् पद पर सोते।
क्या सार्थक ऐसों का होना जो सोने को ही आते ?
पद-गरिमा को मिला धूल में, नाम कलंकित कर जाते।

देशभक्ति-निकष

जो देशभवत हों, कभी नहीं
वे हों अतिशय सन्तति-दायक;
यह देशभक्ति का एक निकष;
है राष्ट्र - शक्ति का उन्नायक।

चिर दें प्रभूत सम्पत्ति शुद्ध;
भारत सदैव साधनमय हो;
शाश्वत अभाव से मुक्त रहे;
जीवन बल इसका अक्षय हो।

रवि एक, एक ही है मयंक;
दो से ही जग है उद्भासित;
क्या देते हैं नक्षत्र ज्योति
पर्याप्त ? मात्र होते अगणित।

अतिशय सन्तति दु:खद सदैव;
क्या सत्य कभी है यह अविदित ?
है श्वास प्रदूषित हो जाता;
पद-गति हो जाती है बाधित।

अम्बर में हों अतिशय विहंग,
तो कैसे वे उड़ पायेंगे ?
वे क्या न परस्पर टकराकर,
हो पंखहीन, गिर जायेंगे ?

विहगेश राष्ट्र उड़ सके सतत,
ऐसा प्रयास हो जन-जन का;
बल-वैभव की हो वृद्धि सदा;
हो जयी राष्ट्र जीवन-रण का

सिद्धान्तमयता

सर्वदा कठिनतम होता है सिद्धान्तमय जीवन;
रूखी-सूखी ही रहती हैं सिद्धान्त की रोटियाँ;
पिपासाभ्यास में ही निहित है उच्चतम वारि;
सुगमता से नहीं नापी जातीं हिमाद्रि की चोटियाँ।

छायाकामी होने पर दिवाकर नहीं दे सकता धूप;
तिमिरभीरु शशिकर नहीं दे सकता चन्द्रिका;
ताप सहना ही पड़ता है धूप देने के लिए;
ममता होती ही है सैनिक के लिए बाधिका।

नागरिकों को भी रहना ही है सैनिकवत्;
मानव के लिए अनावश्यक नहीं हैं सिद्धान्त;
क्या सर्वोपरि नहीं हैं मानवीय मूल्य ?
दीपक तापविरत रह क्या मेटता है ध्वान्त ?

व्यक्तियों के स्वार्थ से बढ़कर होता ही है राष्ट्र;
यदि ऐसा न हो तो असंभव है राष्ट्र-अस्तित्व;
पदासीनता से बड़ा होता ही है उत्सर्ग - कर्त्ता;
श्रेयस्कर बल-विभव से होता ही है व्यक्तित्व।

कहाँ बनता है व्यक्तित्व वैभव या विलास से ?
कहाँ निहित रहती है क्षुद्रता में गरिमा ?
शिलाखण्ड नहीं बन सकते गंगा का उद्गम-बिन्दु;
गागरों में कहाँ रहती है सागर की महिमा ?

भारत तो है हिमालय भी और अम्बुधि भी;
जल-ग्रहण क्षेत्र कहाँ बन पाते हैं स्वयं सुरसरिता ?
कवियों को त्यागने ही पड़ते हैं सुख और साधन;
यों ही नहीं बन पाती है प्राणमयी कविता।

मेघाच्छन्न होकर क्या तिमिरग्रस्त होता है शशि?
काल के असीम अम्बर में वही तो है निशापति;
ग्रहणग्रस्त होकर भी रवि कहाँ त्यागता है स्वभाव?
देता है दिवस वही जो रहता है दिवापति।

क्या प्रदान ही नहीं है मानव का स्वभाव?
पर-भाव में जाना ही तो है पराभव;
स्व-भाव है मनुष्य का मनुष्योचित कर्म;
पद-वैभव-दास क्या है वास्तव में मानव?

मुक्तक

श्रीफल अथवा कहें बिल्वफल, मंगल करते ही हैं फल;
सत्ताधारी का मस्तक हो सदा शान्त, संयत, कोमल।
शीतलता के लिए ख्यात श्रीफल के पल्लव तक होते;
क्यों ज्वाला का भार मनुज हैं अपने मस्तक पर ढोते?

नया हिमालय

चढ़े तुंग हिमगिरि-श्रृंगों पर
फिर भी ऊपर चढ़ना है;
हमें हिमालय के श्रृगों पर
नया हिमालय गढ़ना है!

ऊँचा है हौसला हमारा
विंध्याचल - हिमवानों से;
ऊँची है कल्पना हमारी
अम्बर के अभिमानों से;

ऊँचा है बलिदान हमारा
जीवन के अरमानों से;
हिम्मत की छाती ऊँची है
पर्वत की चट्टानों से

चट्टानों से टक्कर ले - लेकर
नित आगे बढ़ना है ।

अन्त पर्वतों का हो सकता;
अभियानों का अन्त नहीं;
संघर्षों का अन्त नहीं है;
सन्धानों का अन्त नहीं,

अन्त सिद्धियों का, परन्तु
है निर्माणों का अन्त नहीं,
अन्त देह का ही होता है;
प्राणों का है अन्त नहीं ।

बढ़ने का इतिहास नया
गढ़-गढ़कर हमको पढ़ना है ।

गिर-गिर कर, चढ़-चढ़कर हमने
नाप लिया ऊँचाई को;
डूब-डूब कर, तैर-तैर कर
थाह लिया गहराई को;

किन्तु डूबने या गिरने
हमने न दिया तरुणाई को;
जंजीरों में बँध-बँधकर
बँधने न दिया अंगड़ाई को ।

सीमाओं से, विश्रामों से
शाश्वत हमको लड़ना है ।

(हिमालय-अभियान पर भारतीय कविता की प्रतिनिधि
रचना के रूप में भारत-सरकार द्वारा चयनित,

मुक्तक

वे मानव हैं विवश नहीं क्या जो मलभार-वहन करते ?
शूकरवत जीते वसुधा में, तुच्छ कीटवत हैं मरते ।
सभी मावनों को कबतक मानवता-श्री मिल पायेगी ?
घोर विषमता पर कब शुभ समता की सुषमा छायेगी ?

राष्ट्र-वसन्त

पिकी पुकारती रही, पुकारते धरा-गगन;
मगर कहीं रुके नहीं वसन्त के चपल चरण।

असंख्य काँपते नयन लिये विपिन हुआ विकल;
असंख्य बाहु हैं विकल, कि प्राण हैं रहे मचल;
असंख्य कंठ खोलकर 'कुहू-कुहू' पुकारती;
वियोगिनी वसन्त की दिगन्त को निहारती।

वियोग का अनल स्वयं विकल हुआ निदाघ बन;
मगर कहीं रुके नहीं वसन्त के चपल चरण।

वसन्त एक दूत है, विराम जानता नहीं,
पुकार प्राण की सुना गया, कहीं पता नहीं;
वसन्त एक वेग है, वसन्त एक गान है;
जगत्-सरोज में सुगन्ध का मदिर विहान है।

कि प्रीति के पराग का वसन्त एक जागरण,
कभी कहीं रुके नही वसन्त के चपल चरण।

वसन्त की पुकार है—'धरा सुहागिनी रहे;
प्रभा सुहासिनी रहे, कली सुवासिनी रहे;
कि जीर्ण-शीर्ण विश्व का हृदय सदा तरुण रहे;
हरीतिमा मिटे नहीं, कपोल चिर अरुण रहें।

कि जन्म के सुहास का रुके नहीं कहीं सृजन,
इसीलिए विकल सदा वसन्त के चपल चरण।

शिशिर-समीर से कभी वसन्त है गला नहीं;
निदाघ-दाह से कभी डरा नहीं, जला नहीं;
विनाश-पंथ पर पथिक वसन्त है अजर-अमर;
नवीन कल्पना, नवीन साधना, नवीन स्वर।

कि पल्लवित नवीन जन्म पा रहा सदा मरण;
नवीन छन्द रच रहे वसन्त के चपल चरण।

राष्ट्र-शर्वरी

आँखें बन्द हुईं तो क्या है?
बन्द नहीं हो सका जागरण;
रात जागती, ज्योति माँगती,
खोल गगन में अगणित लोचन।

निर्जन-सा संसार हो गया;
नीरव-सा व्यापार हो गया;
ओढ़ तिमिर की काली चादर,
जग यह एकाकार हो गया।

कोलाहल सो गया जगत् का,
किन्तु गान गा रहा समीरण।

तन सोया, सो सका नहीं मन;
श्रम सोया, सो सका न चिन्तन;
प्राणों को आकुल कर देता
अब भी सपनों का आवाहन।

नवजीवन का अभिनन्दन
करता यह मरघट-सा सूनापन।

अमित खगों के पंख लगाकर,
जग के सारे कंठ चुरा कर,
गाती-उड़ती रात जा रही
दूर क्षितिज के सूने पथ पर।

लाने को नूतन प्रभात की
किरणों का स्वर्णिम सम्मोहन।

राष्ट्र-मरीचिका

खुले न मेघ के नयन, कि रह गये तृषित अधर;
मयूर नाचता रहा, खुले न मेघ के नयन।

सुना कहीं मयूर ने कि आज है गगन सघन;
कि साध जन्म-जन्म की जगी, जगी लगी लगन;
कि पंख बन गये पवन, कि पंख बन उड़े चरण;
कि रोम-रोम नाचने लगा, बना विकल-मगन।

गरज-गरज घिरा गगन, गिरा न एक प्रीति-कण;
थके मयूर के चरण, खुले न मेघ के नयन।
खुले न मेघ के नयन, मिटी न प्यास बिन्दु की;
मिला अथाह सिन्धु, पर मिटी न प्यास बिन्दु की।

कि चूर-चूर मेरु का हृदय हुआ पुकार पर;
अचल हुआ विचल-विकल अमर-अधीर प्यार पर;
असीम की वियोगिनी रुकी नहीं कछार पर;
बिकी, लुटी, मिटी अनेक बार ज्वार-ज्वार पर।

कि बूँद-बूँद में असीमता अथाह सिन्धु की—
बिखर गई, निखर गई, मिटी न प्यास बिन्दु की;
मिटी न प्यास बिन्दु की, मिली न प्रीति की दिशा;
खुले न मेघ के नयन, मिटी न प्यास बिन्दु की।

कि आसमान से उतर, जमीन पर गली-गली—
खुली-खिली अमन्द चाँदनी, दुलार में पली;
समस्त रात्रि साधना जिसे निहारती चली;
कि भोर हो गया, चकोर की मिटी न बेकली।

खुले कमल, मुंदे कुमुद, मिटी न मोह की निशा;
प्रभात की किरण मिली, मिली न प्रीति की दिशा;
मिली न प्रीति की दिशा, खुले न मेघ के नयन;
कि पंख मोर के झड़े, खुले न मेघ के नयन।

राष्ट्रपूर्णिमा-जागरण

यह निशा का मौन मुझसे
माँगता है गान;
हैं उन्हींदे नयन, तो भी
जाग मेरे प्राण।

जागरण ही ज्योति शाश्वत;
नींद ही है रात;
गान ही मधुमास है चिर;
रुदन ही बरसात।

जागरण का, गान का है
प्राण में आह्वान।

किरण-रथ पर बैठ, धरती—
पर उतर आकाश—
शून्य को आधार देता,
ओस को उल्लास।

विहग देते पंख को स्वर,
गीत को गति-दान।

पूर्णिमा गाती उठाकर
सिन्धु में हिल्लोल;
सिन्धु देता चाँदनी को
भेंट अपने बोल।

गीत हैं उत्तर, गगन है
प्रश्नचिह्न महान्।

प्राण ! रहते रात, रच लो
गीत और प्रकाश;
ज्योति की ध्वनियाँ उड़ाये
प्रात का वातास।

जन्म के सौन्दर्य से
रँग दें मरण के वाण।

प्रेम-दृष्टि

मानव अनादि से नश्वर है,
पर प्रेम कभी नश्वर न हुआ।

काले-काले बादल छाये,
कितने भीषण तूफान उठे;
आँखें ताकती रहीं, सम्मुख
अगणित प्राणों के प्राण उठे।

पर मात्र प्रेम को मरने का
विकराल प्रलय में डर न हुआ।

आया आवेश कभी क्षण भर;
नगराज हिमालय डोल उठा;
कुछ भय खाकर, कुछ मस्ती में
गूँगा निर्जन भी बोल उठा।

मुखरित कर देता है जग को;
पर स्वयं प्रेम को स्वर न हुआ।

प्रेमी मानव है पूज रहा
गिरि को, वन-तरु को, निर्झर को;
नयनों में गंगाजल भरकर
पूजा है उसने प्रस्तर को।

मानव ने प्रस्तर को पूजा;
पर प्रेम कभी प्रस्तर न हुआ।

राष्ट्र-शरत्

सोते क्यों शरत्-चाँदनी में ?
यह रात जागने की आई;
चन्दा के दूध-कटोरे से
कुछ बिन्दु माँगने की आई।

साथी ! नीची हो दृष्टि नहीं;
आँखें ऊपर को ओर करो;
जो छवि आँखों में साँझ बसी,
देखते उसी को भोर करो।

यह शरत्-चाँदनी वर्षा के
बादल से लड़कर आई है;
अब अपनी विजय-ध्वजा इसने
जल, थल, नभ में फहराई है।

इस उज्ज्वलता की जय बोलो;
मृदु शीतलता की जय बोलो;
यह ज्योति नहीं मिलने वाली;
इसमें आँखें खोलो, धोलो।

देखो, शबनम के फूल झड़े;
कुमुदों ने भी अगड़ाई ली;
नभ के नयनों से धरती के
नयनों ने आज लड़ाई ली।

सन में आ गई सनक-जैसी;
पागल भौंरो के क्या कहने ?
लो, दिगम्बरा अम्बरा चली
चमकाती तारों के गहने।

चन्द्रिकास्नात लगता भूतल,
जयमाला भी ज्योत्स्ना लाई;
खिल पड़े कास भी मुक्तहास;
भदई नैवेद्य लिये आई।

फूलों ने पंखुड़ियाँ खोलीं,
पर खोले आज तितलियों ने;
छवि के अवगुंठन खोल दिये—
इन दोनों की रँगरलियों ने।

पीड़ित किसान, पर, सोये हैं,
उनकी आँखें तो खुल न सकीं;
जो डूबी रहीं पसीने में,
वे धवल धार से धुल न सकीं।

क्या रश्मि, चन्द्रिका, मलय पवन ?
झोपड़ियों में खिड़की न खुली;
हाँ, शरत्-चाँदनी में भी उन
दरवाजों की कीचड़ न धुली।

त्योहार मनायें क्या किसान !
उत्सव मजदूर मनायें क्या ?
खेतों में है उनकी जबान;
वे घर-आँगन में गायें क्या ?

देखते चाँद को क्षण भर, फिर
अपने जीवन का अन्धकार,
देखता कौन, जब झड़ते है
उनकी आँखों के हरसिंगार ?

गाँवों के गन्दे जीवन में
जाते चाँदनी लजाती है,
शीशे में, जल में, दूबों पर
अपना सौन्दर्य बिछाती है।

श्रृंगार शोषकों का करती;
दे रही उन्हें ही शीतलता;
शोषित मजदूर-किसानों को
मिलती न तनिक भी शाद्वलता।

उपजाते खून-पसीने से
जो अन्न, नहीं खा पाते हैं;
जीवन की छन्द-रश्मियों को
नभ के विषधर पी जाते हैं।

हो शरत्-चाँदनी अब ऐसी,
जन-गण को समता मिल पाये;
उनका भी जीवन हँस पाये;
यौवन - कलिकाएँ खिल जायें।

●

मुक्तक

अखबार तब बड़ा है जब नीतियाँ सही हों;
यदि हो चरित्र नर में, सर्वत्र ही बड़ा है।
सरकार भी बड़ी है, यदि काम हों सही तो;
व्यक्तित्व सर्वदा ही सरकार से बड़ा है।

लोकतंत्र-प्रश्नचिह्न

प्रश्नचिह्न है लोकतंत्र पर नव स्वतंत्र भारत के;
लूटतंत्र में लोकतंत्र की परिणति क्या वांछित है?
सम्यक् ही चाहिए तंत्र, हो अमृत मंत्रमय शाश्वत;
लोकतंत्र क्या लूटतंत्रमय हो सकता समुचित है?

मार्च-लूट हो गई पुरातन, नोट-लूट वैसी ही;
अब तो वोट- लूट के मारे लोकतंत्र कुण्ठित है;
विधायिका-संसद् तक पहुँची लूटतंत्र की ज्वाला,
मिले पेनशन एक वर्ष में ही, क्या न्यायोचित है?

न्याय और अन्याय हो गये शब्दकोश में सीमित;
गोली, वोट-लूट में ही है न्याय हो गया केन्द्रित;
जो सत्ता में रहे, न्याय उसकी कथनी में रहता;
सत्ता से वंचित जन को रहना ही होगा कुण्ठित।

भीषण अनय कभी समता क्या दे सकता मानव को ?
बढ़ता जाता है निरीह जनता का भारी शोषण;
लोलुपता के सर्पों की जिह्वाएँ बढ़ती जातीं;
करते हैं विषदन्त अनवरत क्षत कर्त्तव्यों के तन ।

शिशुवत् कोमल ही तो हैं कर्त्तव्यों के कुल अवयव;
सदा नहीं क्या आवश्यक उनका पालन-संरक्षण ?
अनाचार, उत्कोच, तस्करी क्या कर्त्तव्य कभी हैं ?
कदाचार से क्या संभव होता सुयोग्यता-अर्जन ?

जो समाज को करे विभाजित, कैसा वह आरक्षण ?
लोकतंत्र की रक्षा क्या यह आरक्षण कर सकता ?
क्या कर्त्तव्य-उपेक्षा से सुख मानव पा सकते हैं ?
क्या शासन वह जो भूखों के उदर नहीं भर सकता ?

राष्ट्र-शीत

पर्वत के हिमसर से चलकर,
आ गई वायु सर-सर, सर-सर;
लो सजा देह पर वस्त्र-अस्त्र,
या बिना वस्त्र काँपो थर-थर ।

हाँ, निकल कीच से वसुन्धरा—
ने ली है नूतन अँगड़ाई;
कर शरत्-चाँदनी में नहान,
फूलों के वस्त्र पहन आई ।

धानी चूनर में जड़ आये
बहुरंग मटर के गुल बूटे;
नीली अलसी पर वासन्ती
सरसों के फव्वारे छूटे ।

मुस्कान चने की दब न सकी,
बर्रे की कुसुम-परी विकसी;
हर अँगड़ाई पर झूम-झमक,
अरहर चलती हुलसी-हुलसी।

यह ऋतु रंगीनी की आई;
ऋतु आई मौज उड़ाने की;
ऋतु खूब पहनने-खाने की;
मेवे-मिष्टान्न पचाने की।

सोने की रातें बड़ी हुईं;
हो गये काम के दिन छोटे;
साधन वाले दुबले खाकर,
इस मौसम में होंगे मोटे।

वे पृथुलकाय भी सज-धजकर
उड़ रहे पवन के पंखों पर;
जनगण के ऊँचे स्वप्न ठिठुर,
उठ सके न धरती से ऊपर।

ऊनी कपड़े, कम्बल, लिहाफ,
बिजली के बारूदी हीटर,
फिर चाहे बरस पड़ें ओले,
या गिरें हिमालय के प्रस्तर।

पर करें रहम ओले-पाले
वैसी जनता हतभागी पर,
सदियों से स्वप्न पिघलते हैं
जिसके अभाव की रेतो पर।

झोपड़े झुके हैं स्वयं फटे,
जाड़े से ठिठुर सिकुड़ते हैं;
देखता कौन? उनमें गुमसुम
कितने हतभागे मरते हैं।

रहने का भी न ठिकाना है,
रंगीन वस्त्र वे क्या लेंगे?
नंगी छाती फट जायेगी,
बच्चे उनके जब तरसेंगे।

कुछ लोग समझते हैं सर्दी
पढ़ तापमान अखबारों में;
देखते दूरदर्शन पर, या
सुनते हैं ध्वनि-झंकारों में।

क्या स्वप्न उठेंगे? सत्य यहाँ
मिथ्या के बले से दबा हुआ,
कितने तूफानों का मारा
साधन-दीप है बुझा हुआ?

क्या कफन करेगा मरने पर?
जीवन में दवा नहीं मिलती;
जाड़े में धूप नहीं मिलती;
गर्मी में हवा नहीं मिलती।

भीगते बहुत, पर हरे नहीं
हो पाते मन बरसातों में;
रो रहे अँधेरे से घायल
इन्सान चाँदनी-रातों में।

कपड़े वाले हैं थोड़े-से;
नंगों की है ज्यादा है जमात;
खानेवाले हैं गिने-चुने,
भूखों की लम्बी जात-पाँत।

हैं कई कोटवाले थोड़े,
हैं एक कोटवाले ज्यादा,
हैं बिना कोटवाले असंख्य;
गलकर मरने पर आमादा।

किस भाँति देखिये जीते हैं
कँपकँपी मचाती सर्दी में!
गोली लकड़ी भी जल उठती
हतभागों की हमदर्दी में।

हाँ, आग सहारा बन जाती
दुनिया भर में लाचारों का;
हिलने वाली द्रुम जल उठती;
गढ़ जलता अत्याचारों का।

कृषक-संगीत

संगीतों में प्राण हमारे, प्राणों में संगीत समाया;
जीवन की है करुण कहानी, उसको गाकर दु:ख भुलाया;

होते भोर प्रभाती गाई;
साँझ हुई तो झाल बजाये;
उड़ी व्योम में तान, मस्त हो,
हमने निज अरमान जगाये।

गाये गीत, रोटियाँ खा लीं, बड़ी रात है, सर्दी आई;
फटा-चिटा कम्बल कन्धे पर, खलिहानों में आग जगाई।

सुना किसी दिन कोयल बोली,
याद पड़ा अब आई होली;
खाने को भरपेट मिलेगा;
मस्त इसीसे टोला-टोली।

चरवाही का जीवन कैसा ? पशुओं के सँग दिवस बिताना;
लगे भूख तो गूलर, पाकड़, बनबेरों से प्राण जुड़ाना।

बोलो, कैसे गान हमारे ?
बोलो, कैसे प्राण हमारे ?
आँसू से गीला है जीवन;
क्रन्दनमय अरमान हमारे।

अपना भी क्या जीवन होता ! कैसे अपना गाना होता।
सोने को धरती, पुआल को ही ओढ़ना-बिछाना होता।

थोड़े में है पस्ती-मस्ती;
थोड़े में है महँगी-सस्ती;
थोड़ा ही अन्तर है, लगभग
एक दशा में सारी बस्ती।

रोते-रोते बचपन बीता, रोते-रोते गई जवानी;
यही किसानों के जीवन की छोटी-सी है रामकहानी।

धोबी का बेटा

पहुँच गया धोबी का बेटा मुस्काता मेरे आँगन में।

सीधा-सादा, भोला-भाला, पहने कपड़े स्वच्छ-मनोहर;
आया है मेरे घर के भी कपड़े साफ किये कुछ लेकर;
उसे देख आया आँगन में, घर के बच्चे लगे उछलने;
कपड़े फेंक हुए जो गन्दे, लगे पहनने चकमक सुन्दर।

बड़े हर्ष का समय आ गया है इनके जीवन में;
आया है जब धोबी का बेटा मेरे आँगन में;

तुरत पाठशाला जाने की करने लगे बड़ी तैयारी;
लीं जलेबियाँ, कचौड़ियाँ भी, अच्छो-अच्छो, प्यारी-प्यारी;
धोबी के कन्धों पर धरकर हाथ, लगे मस्ती से हँसने;
कहा, चलो खा लें कचौड़ियाँ, चट कर लें जलेबियाँ सारी।

लगा कि ये पंछी स्वतंत्र अब उड़ने को हैं विकल गगन में;
आया है जब धोबी का बेटा मेरे आँगन में।

उन्हें देखकर बिगड़ीं माता, निकलीं जब घर के अन्दर से;
बकने लगीं क्रोध में आकर, केश नोचती अपने सर से;
नष्ट हुई कुलधर्म-प्रतिष्ठा; ऊँची जाति मिली मिट्टी में;
धोबी के बेटे से बोलीं-'भाग अभी तू मेरे घर से।'

सुनते रक्त नहीं रह पाया उन बच्चों के तन में;
सारे बच्चे एक संग ही चीख पड़े आँगन में।

रोते जाते, प्रश्न एक उठता था उनके सर में;
हुआ भला अपराध-पाप क्या खा लेने से घर में?
साथ सैकड़ों बच्चों के वे विद्यालय में खाते;
किन्तु पड़े थे नहीं अभी तक वे भारी चक्कर में।

एक साथ खाना परिवर्त्तित हुआ घोर क्रन्दन में;
एक संग ही थे परन्तु रोते बच्चे आँगन में।

एक साथ रोने से भी क्यों नहीं जाति है जाती?
क्यों न साथ हँसने पर भी दुनिया प्रतिबन्ध लगाती?
मानवता को करें विभाजित, क्या अपराध नहीं है?
क्यों न पापमय इस बन्धन से मानवता अकुलाती?

सुनते हैं, मानव जीवित है केवल परिवर्त्तन में;
सदियों से क्यों बँधा हुआ है इस घातक बन्धन में?

बबूल

मुझसे न पुजारिन, माँग फूल।
मैं तो तेरे उस महादेव के हाथों का फेंका त्रिशूल।

विषजन्तु बने हैं कण्ठहार, मैं तो हूँ बंजर खेतों में;
मैं कठजीवी हूँ; भला कहाँ मरता हूँ जलती रेतों में ?

देता हूँ मैं भी फूल, किन्तु हैं कहाँ देवता को कबूल ?

मैं खिला कंटकों में करता, पर क्या मेरा उतना आदर ?
जितना मदार को मिलता है, चढ़ता ग्रीवा पर, मस्तक पर।

हल में, छप्पर में लगता हूँ, क्या है यह मेरी महाभूल ?

करता दन्तों का परिष्कार, पर मैं हूँ माना गया घृणित;
मेरे फल खाते हैं पशु ही, पत्ते भी होते हैं भक्षित।

मेरा शरीर करते विक्षत; देते उखाड़ मुझको समूल।

आपत्ति नहीं मैं करता हूँ, अर्पित करता अपना सरबस;
जीवित रहने पर देता हूँ निज फल, शाखाएँ, प्राण, स्वरस।

सींचता कौन मुझको ? मेरे मस्तक पर चढ़ती सदा धूल।

●

खेतों का माली

दीवाना अपने नन्दन का, आरी-आरी घूम रहा मैं;
इन खेतों की हरियाली से मस्ती लेकर झूम रहा मैं।

हरे हुए तो प्राण हरे हैं;
मुरझाये तो प्राण मरे हैं;
जीवन का नाता है इनसे,
इनमें कुल अरमान भरे हैं।

जूही और चमेली तो हैं फूलों के माली की प्यारी;
इनपर है बलिहार विश्व-छवि, हँसती इनकी क्यारी-क्यारी।

पर मेरा तो विश्व निराला;
देगा कौन सुरभि का प्याला ?
काँटों में रहना है मुझको,
मैं जिनकी छवि का मतवाला।

अगल-बगल ही स्वर्ग बसा है, जहाँ अदन गुलजार सदा है;
छाया मेरे आँगन में पड़ती, इसका त्योहार बदा है।

हँसना इनमें, रोना इनमें,
खाना इनमें, सोना इनमें,
दिन भर पानी-पानी होकर
जीवन-यौवन खोना इनमें।

तन का बहा पसीना तो कुछ सरस हुई बालू की रेती;
खाने के दिन आये तो करना घर में आँसू की खेती।

पूछ हवा से दौड़े आना;
घर का, तन का ध्यान भुलाना;
पूजा का है रूप यही, जग
सीखे मुझसे नेह लगाना।

घर भरने को हाय ! किसी का, मैं पंछी का द्रोही होता;
स्वागत है, सबसे पहले तुम भर लो अपना-अपना खोंता।

●

मुक्तक

विषम नीति से समता क्या सम्भव होती है ?
सबके हित सम नीति रहे, यदि वांछित समता;
भेदभाव से क्या समता सम्भव हो सकती ?
क्या न विषमता करती है उत्पन्न विषमता ?

राष्ट्र-पावस

पायल बोली रिमझिम-रिमझिम,
साँसें बोलीं सर-सर, हर-हर;
बादल गरजे, बिजली चमकी;
आई वर्षा झिर-झिर, झर-झर।

जन की लाली काली वर्षा;
धरती की हरियाली वर्षा;
पल्लव-पल्लव पर थिरक उठी;
नाची डाली-डाली वर्षा।

यह कौन परी मदमाती है ?
झंझा के रथ पर आती है;
झिल्ली की घन झनकारों पर
जुगनू के दीप सजाती है।

तन-मन मयूर के नाच उठे;
दादुर के बन्दी कण्ठ खुले;
मचली धरती की गहराई;
नभ के उन्नत अभिमान धुले।

झूलती धरा, झूलता गगन;
झूला-झूमा हिमवान आज;
झूले-डोले, बोले उझके,
मचले-पिघले पाषाण आज।

वह तो देखो, झूमती नाव;
नौका में पानी भर आया;
भीगे नाविक ने मस्ती से
सावन का गीत मधुर गाया।

वह नाव-नाव ही है, पानी
कितनों के घर में भरता है;
अपने घर में अशरण मानव
किस भाँति गुजारा करता है।

जो बाँध बने हैं अभी-अभी,
वे अकस्मात् टूटने लगे;
लगता है उनपर वरुण-वाण
बूँदों से ही छूटने लगे।

है नहर सूखने को बनती;
हैं बाँध टूटने को बनते;
चलनेवाले नलकूप नहीं;
वे कोष लूटने को बनते।

हाँ, संग फुहारों के चलकर,
गाँवों में है आ रही बाढ़,
जो भूमिहीन जन हैं, उनके
मन में जागी इच्छा प्रगाढ़।

धनखेतों में रोपनियों के
गूँजने लगे हैं मधुर गान,
पर यदि अपनी धरती होती,
कैसा होता जीवन-विधान।

अपनी भी थोड़ी धरती हो,
अपना भी एक बगीचा हो;
मस्तक पर अपना छप्पर हो;
खटिया हो ,दरी-गलीचा हो।

सोचते कृषक भी हैं ऐसा—
वर्षा से खेती बह न सके;
छप्पर न धँसे, भीगे न खाट,
दीवार पिघल कर ढह न सके ?

किस्मत बेबस ताके न गगन;
खेतों को पानी दे पाये;
जब चले प्रिया से मिलने प्रिय,
वह नहीं मेघ से डर जाये।

बोलो-बोलो हे मेघदूत !
लाओगे ऐसा सुखमय स्वर ?
जिसपर झूमेंगे ग्राम नगर,
किस्मत बरसेगी छहर-छहर !

प्रायः भारत ऐसा ही है;
अति धूलधूसरित, मटमैला;
सामने दीखता रेत-खेत,
जिसमें है गन्दा जल फैला।

वर्षा विभीषिकामयी यहाँ;
बस्तियाँ बहा ले जाती है;
है यहाँ बाढ़ में भी अकाल;
सूखी धरती चिल्लाती है।

हो सके यथावश्यक वर्षा;
वांछित है ऐसा आयोजन;
हो यहाँ बाढ़-सूखा न कभी;
मिल सकें सभी को पट-भोजन।

मुक्तक

आपाधापी, छीनाझपटी, चलती लूट भयंकर है;
दो प्रचार-व्यय, रखो प्रचारक, सब कुछ मिलता सत्वर है!
स्वाभिमान-गरिमारक्षा से तो निर्धन रह जाना है;
सर्वाधिक यदि हो प्रचार-व्यय तो सर्वाधिक पाना है।

राष्ट्र-शिशिर

तरुगण के पल्लव कहाँ गये ?
हैं कहाँ गये गायक विहंग ?
क्या लेगा किसलय-कलरव से
वन - तरु जीवन का नया रंग ?

वह देखो, हैं आ रहे शून्य—
पथ को देखते अरुण लोचन;
सेमल - पलास की अँगड़ाई—
से लगा झूमने-सा मधुवन ।

आ रहे नवांकुर अरुणकेतु,
जैसे आती है नई किरण;
संध्या की अरुणाभा ही तो
लाती अरुणोदय का नन्दन ।

पल्लव- नवदल में हो परिणत,
आयेंगे वन में अरुणचरण;
मधुरस छलकाते आयेंगे
महुए के भी आनन्द - सुमन ।

अंगूर कहाँ से पायेंगे
जो अभी दीन हैं कृषक-श्रमिक ?
महुआ-मड़ुआ खाकर ही ता
वे करते हैं निज श्रम दैनिक ।

धन है उनका सन्तोष बना;
आशा है उनकी अमित शक्ति;
वे नहीं राष्ट्र करते खण्डित;
रखते अखण्ड हैं देशभक्ति ।

वे अपने खून - पसीने से
मधुमय करते रहते कानन;
अर्पित करते अपना जीवन,
लाने को जग में नवजीवन ।

कर्त्तव्य जहाँ, अधिकार वहीं;
वे शिखरों पर जायेंगे ही;
कर्त्तव्यनिरत माली समुचित
स्वत्वाधिकार पायेंगे ही ।

उत्सर्ग व्यर्थ क्या होता है ?
लाता है वही अरुण क़िसलय;
शाखाओं पर झूमते हुए
चढ़ते हैं नवपल्लव निर्भय ।

कोकिल करते हैं स्वरोत्सर्ग;
होता कण्ठों का नवीकरण;
नव अमृतमंत्र, नव स्वर लेकर
भरते नवगीतों का गुंजन ।

जब शिशिर - साधना होती है,
नवहरीतिमा आती वन में;
सम्यक् श्रम से आता ही है
ऋतुराज राष्ट्र के जीवन में ।

मधुमास बनाने पतझकर को,
कवि-कोकिल को गाना होगा;
शाश्वत आशावादी स्वर से
नूतन वसन्त लाना होगा

पीढ़ियाँ नहीं हैं भली - बुरी;
हैं भले - बुरे होते मानव;
प्रत्येक भविष्यवत् ला सकता
नवकीर्त्तिमान, अभिनव गौरव ।

आवश्यक है अविरत प्रयास;
अनिवार्य सदा सम्यक् पोषण;
आचरण - चरण ही दे सकते
संयम-पथमय जीवन - दर्शन ।

भारतमाता-पुत्र

भारतमाता-पुत्र, नहीं मैं मातृहीन हूँ;
मातृशक्ति मेरी भारतमाता को अर्पित;
मातृभूमि है सुलभ, नहीं मैं भूमिहीन हूँ;
देशभक्ति निर्झर से करता इसको सिंचित।

स्वर्ग कल्पना चाहे जितनी भी सुन्दर हो;
किसी स्वर्ग को नहीं मानता भारत के सम;
इतना सुन्दर तो कोई भी देश नहीं है;
कहीं कभी इसकी समता है, केवल है भ्रम।

हम देंगे यदि स्वेद, राष्ट्र सुन्दरतर होगा;
देंगे यदि निष्ठा सदैव, होगा मृत्यु जय;
यदि सर्वस्व करेंगे न्योछावर भारत पर,
इसमें क्या सन्देह कि होगा युग-युग दुर्जय ?

अमृतपुत्र हम अमृत राष्ट्र के, क्या मर सकते ?
बढ़ता ही जाता चिर जीवन बलिदानों से;
उत्सर्गों से बढ़कर क्या उपलब्धि कहीं है ?
बढ़ती जाती शक्ति देश की अभियानों से।

माता देती दान, नहीं सन्तानें देतीं;
माता को प्रतिदान भी नहीं दे पाते हम;
शाप नहीं, बरदान सदा देती है माता;
दे पायें अधिकाधिक हम अपना पावन श्रम।

श्रम का भी तो लाभ हमीं को मिल जाता है;
माँ कुछ भी तो हमसे कभी नहीं है लेती;
यह न समझ लें मात्र जन्म ही देती माता,
माँ हमको पोषण, जीवन, तन-मन-धन देती।

माता की अस्मिता हमारा गौरव-वैभव;
माँ का ही अस्तित्व हमारा सब कुछ होता;
सबल सुरक्षा-कवच हमारा माँ का आँचल;
जीवित रहती माता तो क्या आत्मज रोता ?

नमन सदा भारतमाता को करता हूँ मैं;
मातृशक्ति चिर वंद्या होती, सतत वन्दना;
अर्पित भारतमाता को तन-मन-धन सारा;
मातृभूमि के कण-कण की हो सदा रक्षणा ।

●

मुक्तक

अब राष्ट्र-तिमिर के हरण हेतु जनमन-प्रदीप को जलना है;
चिर स्वतंत्रता-उद्यान हेतु ही हमें बीजवत् गलना है;
क्या कभी स्वार्थपरता से है चलता स्वतंत्रता-यान कहीं ?
क्या पदलिप्सा-सत्तालिप्सा से होता जनकल्याण कहीं ?

कुष्ठ-चतुष्टय

जो निष्ठीवन का निक्षेपक
है, तन-मन से कुष्ठित है;
वह क्या कुछ सत्कर्म करेगा ?
रहता ही वह कलुषित है ।

अश्लीलता कभी दे पाती
जीवन का सौन्दर्य कहाँ ?
शालीनता नहीं रह पाती,
रहती यही प्रवृत्ति जहाँ ।

मिथ्यावादी क्या गरिमा —
महिमा से होते हैं मण्डित ?
स्वार्थवाद के, जातिवाद के
कीट रहेंगे पदमर्दित ।

इन चारों दोषों से कोई
क्या समाज बन सकता है ?
अन्धकार के दूतों से क्या
दीपोत्सव मन सकता है ?

ध्वज-गान

ऊँचा सदा रहेगा, झंडा ऊँचा सदा रहेगा;
हिन्द देश का प्यारा झंडा ऊँचा सदा रहेगा।
नहीं झुकेगा, नहीं झुकेगा, झंडा नहीं झुकेगा;
तूफानों से और बादलों से भी नहीं झुकेगा।

केसरिया बल भरनेवाला, सादा है सच्चाई;
हरा रंग है हरी हमारी धरती की अँगड़ाई।

सदा चक्र कहता कि हमारा कदम न कभी रुकेगा।
ऊँचा सदा रहेगा, झंडा ऊँचा सदा रहेगा।

आसमान में लहराये यह, सागर में लहराये
जहाँ-जहाँ जाये यह झंडा, यह सन्देश सुनाये।

'है स्वतंत्र भारत सदैव, जग को आजाद करेगा।'
ऊँचा सदा रहेगा, झंडा ऊँचा सदा रहेगा।

नहीं चाहते हम दुनिया को अपना दास बनाना;
नहीं चाहते औरों के मुँह की रोटी खा जाना।

सत्य-न्याय के लिए हमारा शोणित सदा बहेगा।
ऊँचा सदा रहेगा; झंडा ऊँचा सदा रहेगा।
(पाठक-समुदाय के विशेष आग्रह पर चयनित)

'व्यक्तित्व सर्वदा ही सरकार से बड़ा है।

मैंने परिषद् के अवरुद्ध प्रकाशनों को गति दी और अधिकार-सीमा का अतिक्रमण कर विशेष जल-व्यवस्था कराई। साहित्यिक शोषण समाप्त किया। विभिन्न पुरस्कारों की राशियाँ बढ़ाने तथा युवा-पुरस्कार की योजना भी प्रस्तावित की। सर्जनात्मक साहित्य के प्रकाशन को भी परिषद् में स्थान दिलाने तथा उसके लिए पाँच लाख रु० वार्षिक परिषद् को देने की स्वीकृति मुख्य मंत्री से कराई। भाषा के क्षेत्र में जनजातीय भाषा एवं साहित्य का परिचय हिन्दी में प्रकाशित करने, विद्यापति-शब्दकोश तथा तत्सम शब्द-कोश प्रकाशन का भी प्रस्ताव दिया। साहित्यकार-कलाकार कल्याण कोष की भी पर्याप्त वृद्धि कराने का प्रयास किया। इन सबमें सरकारी अवरोधों के कारण मैंने परिषद् से त्यागपत्र दिया। सरकार उसे टालती रही और मुझसे उस पद या किसी अन्य सरकारी पद पर भी रहने का आग्रह करती रही। मैंने स्वीकार नहीं किया और अन्ततोगत्वा परिषद् की भूमिरक्षा के लिए मैंने उसे अपना त्यागपत्र स्वीकृत करने को बाध्य किया। तोष है कि सरकार ने परिषद् के भवन-विकास में मुझे सहयोग दिया था।

राष्ट्रीय संस्कृति सर्वोपरि होती है। आधुनिक अंग्रेज विचारक टी० एस० इलियट ने भी इसे कहा है। भारतीय संस्कृति की सेवा के लिए ही मैंने १९५७ ई० में दलगत राजनीति का परित्याग किया। व्यक्तिगत आधार पर मुझे बिहार-सरकार से कोई असन्तोष नहीं। उसने मुझे हिन्दी सम्बन्धी उच्चतम पद (अध्यक्ष, हिन्दी-समिति) दिया जिसे उसने केवल मान्यवर डॉ० लक्ष्मी नारायण 'सुधांशु' को दिया था। स्व० 'सुधांशु' जी का कृतज्ञ हूँ कि वे मुझे दीर्घ काल तक बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अध्यक्ष रखना चाहते थे।

मैं अपनी प्रथम काव्यकृति 'गणदेवता' में बृहदारण्यक उपनिषद के बृहत्त्रयी तत्त्वों पर बल दे चुका हूँ — प्रदान, करुणा एवं संवरण (लिप्सा-दमन)। इन्हें मैं भारतीय जीवन-दर्शन तथा संस्कृति का मूलाधार मानता हूँ। इनमें चतुर्थ तत्त्व अर्थात् समन्वय एवं सामंजस्य भी निविष्ट करते हुए मैं मानता हूँ कि इनमें भारतीय संस्कृति की अक्षुण्णता और वरेण्यता सन्निहित है। ये 'गणदेवता', 'अशोक', 'शक्तिमयी' एवं 'राष्ट्र-

व्यंजना' के भी मूल मंत्र हैं। हमारी संस्कृति सर्वथा वरेण्या ही नहीं अपितु शाश्वत प्रेरणामयी भी है। प्रयोगात्मक महाकाव्य 'युगान्तर' प्रकाश्य है।

अधिक लेखन से मेरा बाहुशूल बढ़ता है, जो चरमता पर है। दृष्टि-दुर्बलता भी इसी भाँति है। समस्त हिन्दी-जगत्, बंगीय हिन्दी-परिषद् एवं बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रति मेरी विशेष प्रणति निवेदित है। प्रकाशन-प्रेरणा एवं विशेष सहयोग के लिए मैं सर्वश्रीमती लीलावती नारायण. डॉ० उषारानी सिंह, डॉ० पुष्पा श्रीवास्तव, डॉ० मिथिलेश कुमारी मिश्र, डॉ० आशा प्र० मल्लिका अहलुवालिया आदि एवं सर्वश्री आचार्य आनन्दशंकर माधवन, आचार्य केसरी कुमार, डॉ० वासुदेवनन्दन प्रसाद, डॉ० सुरेन्द्र नाथ दीक्षित, डॉ० श्री रंजन सूरिदेव, डॉ० जितराम पाठक, डॉ० नन्दकिशोर तिवारी, डॉ० रामाशीष प्रसाद, डॉ० आनन्दनारायण शर्मा, डॉ० रामकृष्ण मिश्र, हृदय नारायण, मोहन 'प्रेमयोगी', डॉ० रामप्रकाशपोद्दार, डॉ० रामकृपाल मिश्र, डॉ० रामप्यारे तिवारी, डॉ० त्रिवेणी सिंह शर्मा, विंध्यवासिनी दत्त त्रिपाठी. नृपेन्द्रनाथ गुप्त. डॉ० केदारनाथ 'कलाधार', जगत्नारायण शर्मा, गंगाप्रसाद आर्य, डॉ० व्रजमोहन पाण्डेय 'नलिन', डॉ० सरयू प्रसाद, डॉ० सत्येन्द्र 'अरुण', श्रीभगवान विश्वकर्मा शैलेन्द्र प्र० सिंह, डॉ० त्रिभुवन ओझा, रमाकान्त श्रीवास्तव (लखनऊ), डॉ० सन्तोष दीक्षित अमरेन्द्र कुमार, परमानन्द दोषी, डॉ० इन्द्र मोहन झा, डॉ० नत्थूराम शर्मा, डॉ० हेतुकर झा, शशिनाथ मिश्र. डॉ० शंकर प्रसाद सिंह. डॉ० रामशेखर सिंह, डॉ० छोटू नारायण शर्मा, भागवत राम अग्रवाल, रामलखन सिंह, डॉ० दामोदर प्रसाद बर्नवाल, प्रो० कैलाश प्र० सिंह, 'स्वछन्द', सन्तोष चन्द्र झा, चन्द्रानन्द झा, प्राणमोहन प्राण, रामेश्वर चौधरी, विनोद शंकर मिश्र, विश्वनाथ खेताण, रामावतार झुनझुनवाला. रामबालक प्रसाद, (न्यू साहनी प्रिंटिंग प्रेस, पटना के स्वामी), ब्रजविहारी पाण्डेय इत्यादि के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। दुःख है कि आय व्यवसाय एवं प्रचार-प्रवृत्ति से पृथक् और समस्त जीवन अहिबद्ध रहने के कारण पर्याप्त प्रकाशन असम्भव रहा। हिन्दी कार्यों में सहयोग-दाताओं के प्रति चिर कृतज्ञ रहूँगा।

रामनवमी, संवत् २०४८ वि०
रविवार, दिनांक २४ मार्च १९९१ ई०

—रामदयाल पाण्डेय
'देवगीत',
आशियानानगर,
पटना—८०००१४